प्राक्कथन

अकारण करुणावरुणालय श्रीसीतारामजी की कृपा से "श्रीमद्वाल्मीकि रामायण तात्पर्य निर्णय" नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हो गया यह मेरे लिये अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड पर्यन्त श्रीमद्रामायण का तात्पर्य इस ग्रन्थ में प्रतिपादित है। उपक्रम उपसंहार आदि षड्लिगों द्वारा तात्पर्य का निर्णय किया गया है। श्रीमद्रामायण का मुख्य तात्पर्य भगवान् श्रीराम में है। श्रीराघवेन्द्र ने मानव रूप में अवतार ग्रहण कर मानवोचित लीला की है किन्तु स्थल स्थल पर उनकी भगवत्ता का अनायास प्राकट्य हुआ है। युद्ध काण्ड में ब्रह्मा जी ने श्रीराम को साक्षात् नारायण तथा जगज्जननी श्री जानकीजी को साक्षात् लक्ष्मी कहा है। उत्तर काण्ड में तो श्रीराघवेन्द्र को विष्णु का भी कारण कहा है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से उन लोगों का भ्रम दूर हो जाएगा जो लोग श्रीराघवेन्द्र को महामानव मात्र स्वीकार करते हैं।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने श्रीराम को मावन प्रतिपादन करने का दुस्साहस किया है तथा उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने वाले कुछ भारतीय विद्वानों ने भी श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के प्रतिपाद्य देवता श्रीराघवेन्द्र को मानव कहने की कुचेष्टा की है किन्तु इन सभी विद्वानों को रामायण का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी ने अठारह बार श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी से श्रीमद्वाल्मीकि रामायण का स्वाध्याय किया था – यह बात भूषणकार ने स्पष्ट रूप से लिखी है। भूषण, तिलक तीर्थ, शिरोमणि, तनिश्लोकी आदि समस्त संस्कृत टीकाकारों ने भगवान् श्रीराम को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक, अनन्त कल्याण गुणगण सम्पन्न साक्षात् सर्वेश्वर स्वीकार किया है। लगभग २०० पृष्ठों का यह ग्रन्थ विद्वानों एवं

भक्तों के लिये अत्यन्त उपयोगी है साथ ही भ्रान्त लोगों के लिये कल्याण प्रद होगा। डॉ०-श्री रामलोचन सिंहजी एवं डॉ० श्री के० पी० सिंहजो ने इस ग्रन्थ के प्रति अपने भावोद्गार प्रकट किये अतः मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस ग्रन्थ की प्रेस कापी तैयार करने में तथा प्रूफ संशोधन में डॉ० सुनीता शास्त्री का योगदान असाधारण है। प्रतिदिन दो बजे से रात्रि आठ बजे तक प्रेस में बैठकर उन्होंने प्रूफ संशोधन किया अतः उनको मेरा हार्दिक आशीर्वाद है। मैजेस्टिक प्रेस के संचालक डॉ० श्री अमल चन्द्र चटर्जी तथा उनकी धर्मपत्नी का सहयोग सराहनीय रहा अतः वे दम्पती धन्यवाद के पात्र हैं प्रेस के कर्मचारियों ने भी बड़ी तत्परता से कार्य किया है अतः उन सभी को धन्यवाद देता हूँ। काशी निवासी श्री अनिल कुमार ने भी प्रेस कापी तैयार करने में परिश्रम किया है अतः उसे भी आशीर्वाद देता हूँ। श्रीमान् एल० के० मित्रा सुनीता जी के पिता, प्रायः प्रतिदिन सुनीता जी के साथ प्रेस में रहे अतः उनको भी धन्यवाद देता हूँ। छात्र श्री राजेशकुमार ने प्रतिदिन कार से सुनीताजी को प्रेस में पहुँचाया – अतः उसको भी मैं आशीर्वाद देता हूँ।

अन्त में श्रीरामप्राणवल्लभा श्री जानकीजी तथा श्री मैथिली प्राण वल्लभ श्री राघवेन्द्र के श्री चरणों में साष्टांग प्रणति पुरस्सर उनके प्रिय भक्तों के कर कमलों में इस ग्रन्थ को समर्पित करता हूँ।

सीताराम शरण

दो शब्द

'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण तात्पर्य' नामक ग्रन्थ आधुनिक सम्पूर्ण मानव समाज की मानसिकता को संयतता प्रदान करने में पूर्णरूपेण सफल होगा इसमें मेरा अटूट विश्वास है। आदिकवि वाल्मीकि द्वारा संरचित चौबीस हजार श्लोकों वाला अद्भुत ग्रंथ श्रीरामायण जन साधारण के लिये सुगम्य एवं सुबोध सम्भव नहीं हो सकता है। अतएव महाराजश्री ने इसका मूल तात्पर्य लगभग दो सौ पृष्ठों में प्रस्तुत कर लोककल्याण के मार्ग को निःसन्देह प्रशस्त किया है।

वाल्मीकि रामायण आदि महाकाव्य के रूप में सर्व विदित है। जिसको वेद का अवतार स्वरूप आर्ष ग्रंथ माना गया है जो देश विदेश में चिरकाल से प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। समग्र श्री राम कथाओं का मूल स्रोत यही ग्रंथ है। इसकी संरचना क्रौञ्च पक्षी वध की एक अलौकिक घटना से सुसम्बद्ध है। वल्मीक ढेर से निःसृत मुनि वाल्मीकि के श्रीमुख से सहसा करुणामय शोकाकुल भावसिक्त प्रथम श्लोक पितामह ब्रह्मा से उत्प्रेरित सरस्वती के साक्षात् प्रभाव से निर्गमित हुआ; और विश्व में मुनि वाल्मीकि को आदिकवि की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

जब वेदवेद्य परात्पर पुरुषोत्तम भगवान् चक्रवर्ती श्री दशरथनन्दन के रूप में धरातल पर अवध में अवतीर्ण हुये तो वेद भी रामायण के रूप में परिणति प्राप्त कर अवतार चरित्र का गुणगान करने में संलग्न हो गये। श्री रामायण का शुभारम्भ "श्रीराम तत्त्व जिज्ञासा" से हुआ। वेदावतार श्री रामायण उतनी ही महिमा से मण्डित है जितनी वेद की प्रतिष्ठा है। महर्षि वाल्मीकि ने सर्व प्रथम इसको मेधावी श्री लव कुश को कण्ठस्थ कराया। जैसे वेदों का ब्रह्म तत्त्व निरूपण में तात्पर्य है वैसे ही श्रीमद्रामायण का भी परब्रह्म श्रीराम तत्त्व निरूपण में ही मूल तात्पर्य है।

अतएव प्रस्तुत ग्रंथ अमृतमय श्रीराम रस के ऐश्वर्य तत्व को सारांश रूप में सर्व सुलभ कराने में सक्षम है । इसके प्रचार प्रसार से आधुनिक विश्व मानव जो तकनीकी – मशीनी प्रगति के कारण सत्पथ से भ्रमित होता जा रहा है वह अपनी वास्तविक मानव सुलभ मानसिकता को प्राप्त कर लोकमंगलकारी पथ का पथिक बनने में समर्थ हो सकेगा ।

वाराणसी ८ – २ – १९८८

डॉ० राम लोचन सिंह
भूतपूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय
एवं अवकाश प्राप्त प्रोफेसर
और अध्यक्ष भूगोल विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

FOREWORD

It is generally accepted that poetry originated with the great sage Valmika in a spontaneous outburst of compassion. Ever since then, it has proved to be the most powerful means of expression of all that is noblest and highest in the human heart. Driven by a divine inspiration Maharshi Valmika applied his poetic genius in the description of the life and character of Shri Rama who has been traditionally accepted through the ages as an incarnation of the supreme divine Being by all the Vaishnava scriptures and the greatest of saints.

I think it was George Bernard Shaw who while speaking of a certain religion once said that it may be the noblest of religions but it has the worst followers. At times in the course of human history it may be true of any religion and perhaps at the present moment of all religions.

Man is apt to sink into dogmas and sheer formal aspects of religion without caring for the essentials and inner spirit of it and even by misinterpreting things to suit his own conveniences. It is under such circumstances that divine incarnations of the Lord and His Prophets descend down to earth to reinstate the religions and spiritual values to protect the good from evil and to enlighten humanity. Valmika

was one of the earliest who had accomplished this task miraculously and has an immortal influence on the human society till today. The present book on Valmika Ramayan is a laudable effort by the learned author to interpret Valmika Ramayan in the correct perspective and bring to light the essential features of the philosophy of Vashnavism as impounded by one the greatest and most ancient sages.

K. P. Singh
Ex-Dean, Faculty of Science
Banaras Hindu University.

श्री जानकी वल्लभो विजयते

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण तात्पर्य निर्णय

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित श्रीमद्-वाल्मीकि रामायण आदिकाव्य है यह सर्वविदित है। इसको वेद का अवतार तथा आर्ष ग्रन्थ कहा गया है। केवल भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में भी चिरकाल से इसका अबाध गति से प्रचार प्रसार हो रहा है। अपौरूषेय वेदों के पश्चात् सर्वप्रथम बत्तीस अक्षरों वाला अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध प्राकृत संस्कृत भाषा का यह प्रथम श्लोक है। इसकी रचना भगवान् श्रीराघवेन्द्र के अवतारकाल त्रेतायुग में हुई। इसके पश्चात् ही महाभारत पुराण आदि ग्रन्थों एवं काव्यों की रचना हुई क्योंकि समस्त पुराणों व काव्यों में महर्षि वाल्मीकि तथा वाल्मीकि रामायण का वर्णन मिलता है। समग्र श्रीरामकथाओं का मूल स्रोत यही ग्रन्थ है।

इसको रचना क्रौञ्च वध की एक अलौकिक घटना से हुई। पितामह ब्रह्मा को प्रेरणा से महर्षि वाल्मीकि के मुख से साक्षात् सरस्वती ही प्रकट हुई हैं यह कहा गया है। श्रीरामायण में चौबीस हजार श्लोक हैं। इसके प्रथम गायक श्रीकुशलव जी भगवान् श्रीराघवेन्द्र के अपर विग्रह व सर्वगुण सम्पन्न थे। रामायण गान के समय इनकी अवस्था प्रायः बारह वर्ष की थी। इस लघु अवस्था में ही ये दोनों

भ्राता चारों वेद छहों शास्त्र एवं उपवेद संगोत शास्त्र के अद्वितीय ज्ञाता थे। रामायण के प्रथम श्रोता मुनिमण्डली तथा भ्राताओं सहित भगवान् श्रीरामचन्द्र जी थे। इसमें विशेष रूप से श्री सीताचरित का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य देवता सीता विशिष्ट भगवान् श्रीराम हैं।

श्रीरामतत्त्व का प्रतिपादन करने वाला इससे विशाल ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध नहीं है अतः इस ग्रन्थ के तात्पर्य का विवेचन अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णय भारतीय दार्शनिक परम्परा से किया जायगा। मूल ग्रन्थ में ही भगवान् श्रीराघवेन्द्र के असाधारण परत्त्व का एवं माधुर्य का वर्णन है। त्रिवेणी प्रवाह में जिस प्रकार सरस्वती की धारा गुप्त है उसी प्रकार रामायण में भी ऐश्वर्य गोपन का प्रयास किया गया है किन्तु सरस्वती की धारा का दर्शन भले सभी को न हो परन्तु रामायण में ऐश्वर्य का दर्शन प्रबुद्ध पाठकों को पाठ मात्र से ही हो जाता है। अक्षय्यं मधुहन्तारं, यज्ञे विष्णुः सनातनः, सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः, भवान्नारायणो देवः, आदि वाक्यों से अभिधा वृत्ति द्वारा श्रीराम परत्व का प्रतिपादन किया गया है।

जो लोग पाश्चात्य विद्वानों की परम्परा का अनुकरण कर रामायण के प्रतिपाद्य देवता भगवान् श्रीराम को केवल

महामानव महापुरुष मात्र मानते हैं उनके लिए ये प्रसंग नेत्र पटल को खोलने वाले हैं। ग्रन्थ के तात्पर्य निर्णय के अनुशीलन से उनकी भ्रान्ति अवश्य दूर होगी ऐसी आशा है। देश विदेश में अभी तक ऐसा कोई विद्वान् न हुआ न होगा जो शास्त्र प्रामाण्य द्वारा भगवान् श्रीराम के दिव्य परत्व को न मानकर महामानव सिद्ध करें। हम इस लघु प्रबन्ध द्वारा वाल्मीकि रामायण के तात्पर्य निर्णय करने का प्रयास कर रहें हैं। श्रीमिथिलेशराजकिशोरी तथा श्रीकोसल-राजकिशोर के कृपा प्रसाद से यह दुर्गम कार्य सुगम हो सकता है। समस्त सन्तों के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ श्रीमद् रामायण के तात्पर्य बोधन में समर्थ होगा ऐसा विश्वास है।

भगवान् के निःश्वासभूत स्वतः प्रमाण स्वरूप वेद ही हमारे यहाँ एकमात्र परम प्रमाण हैं। भ्रम, प्रमाद (असावधानी), विप्रलिप्सा (लोभ), करणापाटव (इन्द्रियों की दुर्बलता) इन चार दोषों की सम्भावनाएँ मानव रचित ग्रन्थों में सम्भव है किन्तु वेद में यह दोष नहीं है क्योंकि वह अपौरूषेय (मानव रचित नहीं) है।

मंत्र भाग ब्राह्मण भाग के भेद से वेद के दो भाग हैं। आपस्तम्ब के अनुसार 'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' मन्त्र-ब्राह्मणात्मक को वेद कहा गया है। प्रायः समस्त उपनिषद् ब्राह्मण भाग के हैं केवल एक ईशावास्योपनिषद् ही मंत्र

भाग का है। इस प्रकार उपनिषद् भाग भी वेद है। वेदानुकूल समस्त स्मृतियाँ वेद के समान ही मान्य हैं। श्रीरामचरित मानस आदि सन्त वाणियाँ भी वेदानुकूल होने से ही वेदसम ग्राह्य व मान्य हैं। श्रीमद्रामायण तो साक्षात् वेदावतार हो हैं अतः इनके पूज्यत्व व प्रामाण्य में कोई सन्देह नहीं।

वेदवेद्य परात्पर पुरूषोत्तम भगवान् जब श्रीचक्रवर्ती दशरथनन्दन के रूप में अवतीर्ण हुए तब वेद भी रामायण के रूप में अवतीर्ण होकर अवतार चरित का गान करने लगे। [1] इस प्रमाण के अनुसार श्रीरामायण साक्षात् वेद का अवतार सिद्ध हैं। समस्त मानवीय दोषों की सम्भावनाओं से रहित स्वतः प्रमाणभूत वेद ही परतत्व के निर्णय में परम प्रमाण हैं। श्रुति कहती है 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' जो वेद को नहीं जानता है वह उस परमात्मा को नहीं जान सकता है। 'तं त्वौपनिषदं पुरूषं पृच्छामि' उपनिषद् प्रतिपाद्य पुरूष की जिज्ञासा होती है। ब्रह्मसूत्र में 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' से जब ब्रह्म की जिज्ञासा हुई तब ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। उसो प्रकार रामायण का प्रारम्भ भी 'श्रीराम तत्त्व जिज्ञासा' से ही हुआ है।

---

1. वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना॥

महर्षि वाल्मीकि देवर्षि नारद से परब्रह्म श्रीराम को जिज्ञासा करते हैं तब देवर्षि उन्हें मूल रामायण द्वारा श्रीराम स्वरूप का ज्ञान कराते हैं।

ब्रह्मसूत्र में 'जन्माद्यस्य यतः' से ब्रह्म का स्वरूप कहा गया-जिससे जगत् को उत्पत्ति रक्षा एवं संहार आदि कार्य होते हैं वही ब्रह्म है। अथर्वण श्रुति के अनुसार – 'कारणं तु ध्येयः' अर्थात् 'कारण की उपासना करनी चाहिये'। ब्रह्मसूत्र के इस विषय का श्रुति भीं समर्थन करती है।[1] ब्रह्मसूत्र के ईक्षत्यधिकरण में जहाँ प्रकृति की जगत्कारणता का खण्डन है वहाँ प्रकृति को 'अशब्दम्' कहा गया है– 'ईक्षतेर्नाशब्दम्'। वेद में प्रकृति को जगत् का कारण कहीं भी नहीं कहा गया है। ब्रह्मस्वरूप विवेचन के पश्चात् प्रमाण निरूपण में ब्रह्मसूत्र निर्देश करता है–'शास्त्रयोनित्वात्,' ब्रह्म के निरूपण में केवल वेद शास्त्र ही प्रमाण हैं। गीता में भी सभी वेदों से भगवान् ही वेद्य हैं यह कहा गया–'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। वेदों के द्वारा ही भगवान् को जाना जाता है यह विविध प्रमाणों से सिद्ध है।

वेदावतार रामायण की महिमा भी उतनी ही है जितनी वेद की है। उत्तरकाण्ड में रामायण को वेद के समान

---

1. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व।

ही कहा गया है–'रामायणं वेद समम्'। महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत यह आदिकाव्य आर्ष तथा पुरातन है।[1] इस श्लोक की व्याख्या करते समय गोविन्दराज लिखते हैं-यह रामायण वेदार्थ प्रकाशक है। आर्ष का अर्थ यहाँ वेद सम्बन्धी है, वेदोपबृंहण वेदविस्तारक होने के कारण यह आर्ष है। पुरा अर्थात् अवतार से पूर्व।[2] यद्यपि रामायण की रचना श्रीरामावतार के पश्चात् हुई किन्तु 'साकेत गमन' आदि अवतार चरित्र पूर्व ही लिखे गये।

जब श्रीरामायण का महर्षि द्वारा निर्माण हुआ तो सर्वप्रथम उन्होंने इसे श्रीकुश लव को पढ़ाया। वेदों में पूर्णतः परिनिष्ठित (पारंगत) महामेधावी कुश लव को वेदार्थ विस्तार के लिये ही रामायण का अध्ययन कराया।[3] वेदोपबृंहण का अर्थ है वेद के अर्थ को ठीक-ठीक व्यक्त करने वाला ग्रन्थ। जिस ग्रन्थ से जिस प्रबन्ध से वेद का अर्थ भलीभाँति समझ में आवे उस प्रबन्ध को वेदोपबृंहण (वेद विस्तारक) कहते हैं। अवतारी अवतार में भेद नहीं होता अतः वेद और वेदावतार श्रीरामायण में कोई भी भेद

---

1. आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।
2. आर्षम् ऋषिः वेदः तत्सम्बन्धि,
   वेदोपबृंहणमिति यावत्, पुरा अवतारात् पूर्वम्।
3. स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
   वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥

नहीं है। जिस प्रकार वेदों का ब्रह्मतत्त्व निरूपण में तात्पर्य है उसी प्रकार श्रीमद्रामायण का भी परब्रह्म श्रीरामतत्त्व निरूपण में ही तात्पर्य है।

श्रीरामायण का प्रारम्भ करूणा की इस घटना से हुआ अतः इसमें सर्वत्र एकरस करूणा की धारा प्रवाहित है। वैसे तो शृंगारादि नवरसों का रामायण में समावेश है किन्तु करूणरस का वैशिष्टय है। स्नानार्थ तमसा के तट पर आकर महर्षि वाल्मीकि वन की शोभा का अवलोकन कर रहे थे। अचानक काममोहित क्रौञ्चपक्षी को निषाद ने बाण मारा उसके वध से पोड़ित क्रौञ्ची करूण क्रन्दन करने लगी। मुनि का हृदय करूणा से द्रवित हो गया और सहसा उनके मुख से यह श्लोक निकला—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥"

"हे निषाद ! तुम बहुत काल तक प्रतिष्ठा प्राप्त मत करो क्योंकि तुमने क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक (नर) का वध कर दिया है।" जगतीतल का अनुष्टुप् बद्ध यही प्रथम श्लोक था। महर्षि वाल्मीकि बोले- पादबद्ध, समान अक्षर वाला (चार चरणों में आबद्ध, समान आठ अक्षर वाला) तन्त्रीलय समन्वित, (वीणा की लय पर गाने योग्य) शोक व्यथित हृदय से निकला हुआ यह वचन श्लोक ही

अन्यथा नहीं।[1] उसी समय पितामह ब्रह्माजी ने आकर उनके मंतव्य की पुष्टि की-महर्षे ! मेरी इच्छा से ही आपके मुख से सरस्वती निःसृत हुई है अतः आपका यह छन्दोबद्ध बाक्य श्लोकरूप ही होगा। अतः आप तर्क वितर्क छोड़कर श्रीराम चरित्रों का वर्णन करें।[2]

ब्रह्माजीने महर्षि को आशीर्वाद दिया कि श्रीरामजी के गुप्त प्रकट सभी चरित्र आपको ज्ञात हो जाएंगें। आपकी एक भी वाणी इस काव्य में असत्य नही होगी।[3] इस प्रकार ब्रह्माजी से अमोघ वरदान प्राप्त कर महर्षि वाल्मीकि कुशासन पर बैठकर भगवच्चरित्र का चिन्तन करने लगे क्योंकि महर्षि वाल्मीकि के समक्ष वेद के कतिपय मंत्रों को छोड़कर श्रीराम कथा का ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था जिसके आधार पर महर्षि श्रीरामचरित्र का निर्माण करते। वाल्मीकि मुनि के उत्तरवर्ती कवियों के समक्ष तो महर्षि का आदि-काव्य रामायण आधार ग्रन्थ[4] था किन्तु वाल्मीकिजी ने

1– पादबद्धोऽक्षर समस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥

2– मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरू त्वमृषिसत्तम॥

3. रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ···सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥

4. परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम्।

केवल देवर्षि नारद के संकेत सूत्रों (मूल रामायण) को प्राप्त कर ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा भगवत्कृपा से भगवान् श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्रों का दर्शन कर के ही श्रीरामकथा–रामायण की रचना की। वाल्मीकि रामायण की यह अपनी अभूतपूर्व विशेषता है।

श्रीरामचन्द्रजी का हँसना, बोलना, चलना एवं अन्य चेष्टाओं आदि समस्त गुप्त प्रकट चरित्रों का ध्यान द्वारा साक्षात्कार किया।[1] इस प्रकार पितामह ब्रह्मा के प्रसाद से इन चरित्रों का दर्शन करने के पश्चात् ही महर्षि ने उनका यथावत् सही चित्रण किया। पौराणिक कथाओं के अनुसार उस समय महर्षि वाल्मीकि के समान श्रीराममन्त्र का अनन्य जापक दूसरा कोई नहीं था। ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लेख है कि ब्रह्माजी ने सौ करोड़ रामायण का निर्माण किया तथा आदर पूर्वक श्रीनारदजी को पढ़ाकर मर्त्य लोक में भेजा। ब्रह्माजो के हृदय में मर्त्यलोक के दुःख संतप्त जीवों के प्रति दया उत्पन्न हुई अतः देवर्षि से उन्होंने कहा- इस चरित्र के पठन मनन से जीवों का महान् कल्याण होगा अतः आप भूमण्डल में जाकर इस चरित्र का प्रचार करें। श्रीनारदजी ने कहा– पितामह ! मर्त्यलोक में इस समय

---

1. हसितं भाषितं चैव गतिर्या यच्च चेष्टितम्।
तत्सर्वं धर्म वीर्येण यथावत्सम्प्रपश्यति॥

ऐसा कौन सां समर्थ महापुरूष है जो इस चरित्र का चित्रण कर सके ? क्योंकि साधारण पुरूष से यह कार्य असम्भव है। तब पितामह ने ध्यान द्वारा देखा तो महर्षि वाल्मीकि ही इस कार्य के लिए उपयुक्त प्रतीत हुए।

श्रीराममन्त्र के अनवरत जप करने से महर्षि के शिर पर दीमक का ढेर लग गया था किन्तु उन्हें तो यह पता भी न था कि मेरे शरीर पर दीमक का ढेर लगा है। ब्रह्माजी की आज्ञा से प्रचेता (वरूणदेव) ने घोर वर्षा कर दीमक की मिट्टी को बहा दिया और महर्षि का तपः पुञ्ज शरीर प्रकट हुआ जैसे भस्म के हटने से अग्नि का प्रकाश प्रकट हो जाय। इसीलिये ब्रह्माजी ने इनका नाम वाल्मीकि रखा। दीमक के ढेर को वल्मीक कहते हैं, वल्मीक से प्रकट होने के कारण महर्षि वाल्मीकि कहलाये।[1] प्रचेता वरूण ने वर्षा करके मिट्टी हटायी थी अतः इनका दूसरा नाम प्राचेतस भी है। पूर्व में यह भृगु पुत्र थे अतः इन्हें भार्गव भी कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि प्रचेता के दशम पुत्र हैं, डाकू वाल्मीकि नहीं। किसी कल्प में डाकू वाल्मीकि महर्षि वाल्मीकि हो सकते हैं किन्तु वाल्मीकि रामायण के प्रणेता वे नहीं थे। उत्तरकाण्ड में महर्षि ने स्वयं कहा है– रघुनन्दन ! मैंने जीवन में कभी

1. वल्मीक प्रभवो यस्मात् तस्माद् वाल्मीकिरित्यपि।

असत्य भाषण किया हो इसका मुझे स्मरण भी नहीं है। मैं प्रचेता का दसवां पुत्र हूँ।[1] यदि वे डाकू वाल्मीकि होते तो अवश्य कहते कि मैंने कुसंग के कारण युवावस्था में बहुत पाप किये हैं।

इस प्रकार श्रीरामायण महाकाव्य के रचयिता भी महान् हैं, रामायण की यह भी एक विशेषता है। अतएव वेदसम रामायण के रचयिता महान् मन्त्रद्रष्टा महर्षि हैं अतः इस ग्रन्थ को सभी ने प्रमाण रूप में स्वीकार किया है। 'प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि' प्रमेय (तत्त्व) की सिद्धि प्रमाण से ही होती है। परतत्त्व की जिज्ञासा से ही रामायण का प्रारम्भ हुआ है यह बात पूर्व में कही गयी। पूर्वमीमांसा में 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इस सूत्र से धर्म की जिज्ञासा तथा ब्रह्मसूत्र (उत्तर मीमांसा) में ब्रह्म जिज्ञासा की गयी, उसी प्रकार रामायण में प्रथम श्लोक 'नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्' से 'श्रीराम जिज्ञासा' की गयी है।

हमारे सभी भारतीय शास्त्र प्रायः जिज्ञासा, समाधान प्रश्न, उत्तर अथवा संवाद से ही प्रारम्भ हुए हैं। 'नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्' इस वचन के अनुसार बिना पूछे किसी को उपदेश न दें, अतः प्रश्न करने पर ही महापुरुषों ने

---

1. प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यं इमौ तौ तव पुत्रकौ॥

उनका विस्तृत समाधान दिया और वे संवाद विशाल ग्रन्थ रूप में अन्य अनेक जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने लगे। अर्जुन कृष्ण संवाद से श्रीमद्भगवद्गीता, व्यास नारद संवाद से श्रीमद्भागवत तथा प्रायः सभी पुराणों का सूत शौनक संवाद से शुभारम्भ हुआ है। इसके अतिरिक्त इनके अन्तर्गत और भी अनेक अवान्तर संवाद हैं। श्रीरामचरित मानस का प्रारम्भ भी शिव पार्वती संवाद से करते हैं। इसी प्रकार अति प्राचीन परम्परा का दर्शन श्रीमद्रामायण में भी हो रहा है।

उपनिषदों में ब्रह्मतत्त्व के निश्चय के लिये जब शिष्य गुरू के पास जाता है तब सद्गुरू अधिकारी शिष्य को तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हैं क्योंकि आचार्य के द्वारा ही परमात्मज्ञान होता है। आचार्यवान् पुरुष ही भगवान् को जान सकता है। आचार्य से प्राप्त विद्या ही तत्त्व ज्ञान कराने में सफल होती है।[1] परतत्त्व निश्चय के लिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास जाना चाहिये।[2] शम दमादि समस्त साधन सम्पन्न योग्य शिष्य को गुरूदेव ब्रह्मविद्या का उपदेश करते हैं जिससे परतत्त्व की प्राप्ति होती है।[3] श्रुति कहती है– उठो। जागो।। आचार्य की शरण में

---

1. आचार्यवान् पुरुषो वेद, आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापत।
2. तद्विज्ञानार्थं स गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।
3. तस्मै स विद्वानुपसन्नाय ..... तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।

जाकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करो क्योंकि परमार्थ का पथ तलवार की धार की तरह अत्यन्त सूक्ष्म है ।[1] इस प्रकार के आदेश शास्त्रों में सर्वत्र प्राप्त होते हैं । अतः सद्गुरू लक्षण सम्पन्न देवर्षि नारद से शिष्य लक्षण सम्पन्न महर्षि वाल्मीकि परमतत्त्व की जिज्ञासा करते हैं ।

इन दोनों महापुरुषों द्वारा जिस तत्त्व का निश्चय हुआ है वही परतत्त्व है, वही वेदान्त प्रतिपाद्य जगज्जन्मादिकारण परब्रह्म है । वही तत्त्व ज्ञानियों का ब्रह्म है, वही योगियों का परमात्मा है तथा भक्तों का भगवान् है । त्रिकालज्ञ महर्षि वाल्मीकि जिस ग्रन्थ के रचयिता हैं, जिसके प्रथम गायक श्रीलवकुश, प्रथम श्रोता साक्षात् सर्वेश्वर श्रीराघवेन्द्र तथा प्रतिपाद्य श्री सीताचरित । इस प्रकार सर्वविध अलौकिक सामग्रियों से परिपूर्ण इस महान् ग्रन्थ द्वारा जिस तत्त्व का निश्चय किया जाएगा वह अवश्य ही अलौकिक तत्त्व है जो तत्त्ववेत्ताओं के लिये उपास्य एवं प्राप्य है इसमें सन्देहलेश नहीं ।

तप और स्वाध्याय में निरन्तर संलग्न, वाणी विशारद एवं मुनियों में श्रेष्ठ देवर्षि नारद जी से तपस्वी श्रीवाल्मीकि जी ने पूछा-

---

1. उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

"तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदांवरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥"

श्रीमद्रामायण का यह प्रथम श्लोक है। इसी श्लोक में गुरू शिष्य का समीचीन लक्षण कहा गया है। उत्तम श्रेय चाहने वाला साधक शब्द ब्रह्म, परब्रह्म में निष्णात गुरू की शरण ग्रहण करे।[1] श्रुति का सिद्धान्त है कि सर्वप्रथम साधक वेद शास्त्रों के सम्यक् अध्ययन द्वारा पाण्डित्य सम्पादन करे। सब कुछ जानने के बाद बालक बन जाय अर्थात् बालक के समान अभिमान रहित हो जाए। अन्त में भगवद् ध्यान परायण होकर मुनि हो जाय।[2] रामायण के प्रथम श्लोक में इन तीनों पदों का वर्णन है। 'तप स्वाध्याय निरत' से पाण्डित्य पद 'वाग्विदां वर' से बालक पद तथा 'मुनिपुंगव' से मुनि पद का वर्णन किया गया है। इस प्रकार देवर्षि में सद्गुरू के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं। नारद का अर्थ ही है ज्ञानदाता-'नारं ज्ञानं ददातीति नारदः'।

श्रीवाल्मीकिजी का विशेषण है 'तपस्वी'। शिष्य लक्षणों का संकेत एक ही विशेषण से भलीभाँति मिल जाता है। श्रुति में शिष्य (जिज्ञासु) को शम दमादि साधन सम्पन्न

---

1. तस्माद् गुरूं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।
2. तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत् ।
पाण्डित्यं बाल्यञ्च निर्विद्य अथ मुनिः ॥

कहा गया है। शरणागत शान्त शिष्य को गुरू तत्त्वतः ब्रह्म विद्या का उपदेश करे जिससे वह भगवान् को जान सके।[1] गुरू शिष्य संवाद द्वारा वेदावतार रामायण की यह तत्व निर्णय की बिशुद्ध परम्परा वेदानुकूल है। वेदों में ब्रह्मज्ञान का साधक गुरू के पास अत्यन्त श्रद्धा से जाकर जिज्ञासा करता था तभी तो गूढ़तम रहस्य गुरू कृपा से सुलभ होता था। अतः महर्षि बाल्मीकि ने देवर्षि नारद से जिज्ञासा की- देवर्षे ! इस लोक में इस समय गुणवान् (शीलगुण सम्पन्न) अर्थात् समस्त दिव्य कल्याण गुणों से मण्डित कौन है ? वीर्यवान् (बलशाली) धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रत में दृढ़ कौन है ?

परम पवित्र एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय आदर्श चरित्र से युक्त कौन है ? प्राणिमात्र का हितकारी अर्थात् अपराधियों एवं अपने शत्रुओं का भी हित करने वाला पुरूष कौन है ? देवर्षिप्रवर ! सर्व वेद शास्त्रों का ज्ञाता तथा सर्व समर्थ कौन है ? जिसका दर्शन एकरस सदा हो प्रिय एवं मधुर हो अर्थात् जिसके दर्शन करने पर पुनः छोड़ने की इच्छा न हो ऐसा सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्यसुधासिन्धु विशुद्ध सच्चिदानन्द विग्रह कौन है ?

---

1. स तस्मै सम्यक् उपसन्नाय शमान्विताय शिष्याय
प्रोवाच तत्त्वतो ब्रह्मविद्यां येनाक्षरं पुरूषं वेद।

सदा ही अपने स्वरूपानन्द में ही निमग्न अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित महापुरुष कौन है ? क्रोध विजेता तथा दिव्य द्युति सम्पन्न कौन है ? किसीके दोष को न देखकर सदा गुण का ही दर्शन करने वाले असूया से मुक्त कौन है ? युद्ध क्षेत्र में रोष उत्पन्न होने पर जिनके समक्ष सुर, असुर सभी भयभीत हो जाते हैं। कोई टिक नहीं सकता ऐसा कौन है ?

सर्वज्ञ शिरोमणे ! विदित वेदितव्य मुने ! इन सम्पूर्ण गुणों से युक्त जो भी पुरुष हों उनको मैं जानना चाहता हूँ। इस प्रकार निखिल कल्याण गुणगण विशिष्ट पुरुष को जानने की मेरी प्रबल इच्छा है।[1] देवर्षे ! मेरे हृदय में यह महान् कौतूहल है कि इन सभी दिव्य गुणों [सोलह गुणों] से युक्त एक ही पुरुष है तो वह कैसा होगा ? मुने ! इन गुणों में से एक भी गुण जिस पुरुष में हो वह अवश्य देवता हो सकता है और जिसमें ये सभी दिव्य गुण एक साथ विद्यमान हों वह महापुरुष कैसा लोकोत्तर होगा ?

---

1. कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

वह नरश्रेष्ठ कौन है? ये सभी बातें सुस्पष्ट कहिये। महर्षे! आप ऐसे दिव्य पुरुष को जानने में नितान्त समर्थ हैं।[1]

साधारण ऋषि भी मंत्र ब्रह्म का ज्ञाता होता है फिर आप तो साक्षात् महान् देवर्षि हैं अतः आप अवश्य ऐसे पुरुष को जानते होंगें। अतः आप हमें अपना अनुग्रह भाजन जानकर उस पुरुष के नाम, गुण, स्वभाव सभी ज्ञातव्य वस्तुएँ विस्तार पूर्वक कहिये। ऐसा नर कौन है? अर्थात् इन सभी गुणों से युक्त परमात्मा ही हैं यह तो निश्चित ज्ञान महर्षि वाल्मीकि को है किन्तु वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समय इसी लोक में श्रीराम रूप से अवधनरेश श्रीदशरथजी महाराज के गृह में अवतीर्ण हैं। उन्हीं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र की यहाँ विशेष जिज्ञासा है। 'नरः' शब्द यहाँ परमात्मा का पर्याय है- 'नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः' मनुजी कहते हैं- जलतत्त्व की उत्पत्ति नर रूप परमात्मा से हुई अतः उसी नार रूप जल में भगवान् ने अपना निवास बनाया इसीलिये परमात्मा का नाम नारायण हुआ।[2]

---

1. एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
   महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥
2. आपो नारा इति प्रोक्ताः आपो वै नरसूनवः
   ताः यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

इस प्रकार वेदों में सत्, तद्, आत्मा आदि शब्दों से जगत्कारण का वर्णन मिलता है।[1] वेद वाक्य कारण रूप में जिसका वर्णन करता है वही परमतत्त्व श्रीराम रूप से अवतीर्ण हुआ है अर्थात् जगज्जन्मादि कारण भगवान् श्रीराम हैं अथवा कोई और है ? यही जिज्ञासा का विषय है। महर्षि वाल्मीकि देवर्षि श्रीनारदजी के द्वारा यह निश्चय करवाना चाहते हैं कि वेदान्तवेद्य तत्त्व श्रीराम हैं या कोई और हैं ? गुणों के द्वारा ही परतत्त्व की जिज्ञासा की गयी है क्योंकि वेदान्त वेद्य तत्त्व सगुण ही है। भगवान् में सभी गुण दिव्य हैं, गुणों का उत्कर्ष श्रुति में भी सुस्पष्ट है। मुक्त होने पर जीवात्मा ब्रह्म के सभी कल्याण गुणगणों का यथार्थ अनुभव करता है- 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता'। यहाँ रामानुज भाष्य के अनुसार 'काम्यन्ते इति कामाः कल्याण गुणगणाः'। काम अर्थात् कल्याण गुणगण। व्याकरण के नियमानुसार तृतीया विभक्ति अप्रधान में होती है। जैसे 'पुत्रेण सहागतः पिता' पुत्र के साथ पिता आये उसी प्रकार यहाँ 'ब्रह्मणा' में तृतीया विभक्ति है अतः भगवान् की अपेक्षा गुणों का अधिक उत्कर्ष है। तदनुसार ही यहां 'गुणवान्' से गुणों द्वारा परतत्त्व की

---

1. सदेव सौम्येदमग्र आसीत्, तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय,
आत्मा वा इदमग्र आसीत्।

जिज्ञासा की गयी है ।

गुणवान् का अर्थ है शीलवान् । जिस गुण का नित्य निरन्तर स्मरण भक्त करता है वह है शील, अतः यहाँ आवृत्ति वाचक गुण शब्द है । 'गुण्यते पुनः पुनः अनुसन्धीयते इति गुण सौशील्यम् । यदि गुणवान् का अर्थ यहाँ सामान्य गुणों से युक्त अर्थ किया जाय तो प्रकरण बिरुद्ध होगा क्योंकि यहाँ सोलह प्रश्न एक एक गुण के लिये पूछे गये हैं । यदि धर्मज्ञ, कृतज्ञ ये सभी एक एक गुण के बोधक हैं तब गुणवान् भी एक गुण 'शील' का बोधक है । श्रीयामुनाचार्य जो ने आलवन्दार स्तोत्र में गुणवान् का एक हो गुण शील में प्रयोग किया है– 'चराचर को वश करने वाले, उदार, शीलवान् सरल, पवित्र, कोमल, दयालु, मधुर, स्थिर, सम, कृती कृतज्ञ एवं समस्त कल्याण गुणरूपी अमृत के भगवान् समुद्र हैं ।[1] यहाँ गुणवान् एक ही अर्थ में प्रयुक्त है ।

महर्षि वाल्मीकि को सामान्यतः श्रीराम के सम्बन्ध में ज्ञान है क्योंकि इनके आश्रम में जाकर श्रीरामचन्द्र ने इन्हें प्रणाम किया है ।[2] अतः यहाँ महर्षि का सामान्य प्रश्न नहीं

---

1. वशीवदान्यो गुणवान् ऋजुः शुचिर्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।
   कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः समस्त कल्याणगुणामृतोदधिः ।।
2. इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
   अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ।

है अतः सामान्य उत्तर भी नहीं है। जगत्कारणभूत परब्रह्म को जिज्ञासा है तथा उत्तर में भी परतत्त्व का ही निश्चय है। यदि सामान्य प्रश्न होता तो महर्षि को कौतूहल नहीं होता और यदि सामान्य उत्तर होता तो देवर्षि साधारण रूप से उत्तर देते सोचते नहीं– 'बुद्ध्वा वक्ष्यामि' समझ बूझकर हम उत्तर देंगें ऐसा कहते हैं। अतः वेदान्त में सत् ब्रह्म, आत्मा आदि शब्दों से प्रतिपादित श्रीराम ही हैं अन्य देवता नहीं यही उत्तर देवर्षि नारद दे रहें हैं।

महर्षि वाल्मीकि के प्रश्न को सुनकर देवर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए। तीनों लोकों के ज्ञाता श्रीनारदजी वाल्मीकि जी को सावधान करते हुए उत्तर देने लगे।[1] यद्यपि शास्त्रों में शिष्य को कुछ काल समीप रखकर सम्यक् परीक्षा के बाद ही तत्त्वज्ञान के उपदेश की आज्ञा है। 'नासंवत्सरवासिने-प्रब्रूयात्' अर्थात् एक वर्ष के बाद तत्त्व का उपदेश करना चाहिये' इत्यादि आज्ञा सामान्य जिज्ञासुओं के लिये है मुग्ध जिज्ञासुओं को आश्रम में रखकर सर्वप्रथम उनकी जिज्ञासा को बढ़ाकर पश्चात् उपदेश करना चाहिये। इसीलिये स्वामी शंकराचार्य जी ने साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारी को ही ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकारी माना है। जिस प्रकार

---

1. श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्॥

खेत में बीज बोने से पूर्व उसमें उर्वरा शक्ति उत्पन्न की जाती है उसी प्रकार साधक के हृदय में तत्त्वज्ञान रूपी बीज बोने से पूर्व तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न करनी पड़ती है। इन्हीं कारणों से साधारण साधकों के लिये यह नियम है कि उनको कुछ काल आश्रम में रखकर तत्पश्चात् तत्त्व का उपदेश दिया जाय।

भगवत्तत्त्व के विशिष्ट जिज्ञासु तो नितान्त दुर्लभतर हैं। भगवत्कथा के सम्बन्ध में पूछने वाला साधक भाग्य से ही प्राप्त होता है क्योंकि भगवत्कथा के सम्बन्ध में पूछने पर सर्वप्रथम वक्ता पवित्र होता है। तब प्रश्न करने वाला, तत्पश्चात् श्रोतागण पवित्र होते हैं।[1] श्रीराम चरित मानस में भगवान् की कथा पूछने पर श्रीशिवजी ने पार्वतीजी की बड़ी प्रशंसा की है–

'धन्य धन्य गिरिराज कुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूछेहुँ रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जग पावनि गंगा॥

इतना ही नहीं, अपितु शिवजी के हृदय में समस्त श्रीराम चरित प्रकट हो गये तथा श्रीराम रूप भी हृदय

---

1. वासुदेव कथा प्रश्नः पुरूषांस्त्रीन् पुनाति हि।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृन् तत्पाद सलिलं यथा।

में प्रकट हो गया—

हर हियँ राम चरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद अमित सुख पावा॥

श्रीवाल्मीकिजी ने नारदजी से श्रीराम तत्व की जिज्ञासा की है अतः देवर्षि अत्यन्त प्रसन्न हैं और इसीलिये 'प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्' हर्षित होकर उत्तर देते हैं- मुनिराज ! जिन गुणों के सम्बन्ध में आपने प्रश्न किया है वे अत्यन्त ही दुर्लभ हैं तथापि भलीभाँति विचार कर उन सम्पूर्ण गुणों से युक्त एक पुरुष का मैं वर्णन करता हूँ आप श्रवण करें।[1] महर्षे ! आपके द्वारा कथित सोलह गुण एक ही पुरुष में तो नितान्त दुर्लभ हैं ही, एक दो गुण भी अन्यत्र दुर्लभ हैं फिर सम्पूर्ण गुण कहाँ से सम्भव हो सकते हैं ? जितने गुणों की गणना आपके प्रश्न में है उतने ही गुण उस पुरुष में नहीं किन्तु अनन्त हैं। प्रश्न में तो सृष्टि स्थिति संहार के उपयोगी तथा भक्तों के उपयोगी कुछ ही गुणों का संकेत है। वस्तुतः वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम में तो अनन्त दिव्य कल्याण गुण सदा ही एकरस विद्यमान रहते हैं।

---

1. बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिताः गुणाः।
मुने वक्ष्यामहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥

श्रुति में परमात्मा के गुणों को असीम कहा गया हैं। एक बार श्रुति ने केवल परमात्मा के एक गुण 'आनन्द' पर विचार किया किन्तु एक गुण भी असीम अनन्त सिद्ध हुआ— 'सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति'। आनन्द गुण पर विचार करते समय मर्त्यलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के आनन्द की सीमा कही गयी। मर्त्यलोक का पूर्ण आनन्द तब माना जाएगा जब समस्त पृथ्वी धन धान्य से पूर्ण हो तथा पृथ्वी पर रहने वाली समस्त प्रजा भी शिक्षित स्वस्थ एवं धार्मिक हो। ऐसी प्रजाओं से परिपूर्ण पृथ्वी का कोई एक स्वामी हो तब उसको पृथ्वी का तुच्छ आनन्द मिलता है। इस आनन्द से शतगुणित आनन्द अनायास ही संगीतज्ञ गायकों को मिलता है। अब यहाँ से शतगुणित आनन्द पितृलोक में, वहाँ से शतगुणित देवलोक में, उससे शतगुणित आनन्द प्रजापति ब्रह्माजी के लोक में है।

इस प्रकार ब्रह्मलोक से आगे परमात्मा के आनन्द की सीमा की जिज्ञासा हुई तब श्रुति ने स्पष्ट घोषणा की कि अब आगे जो आनन्द है उसकी सीमा नहीं है वह अनन्त है अगाध है। जहाँ से मन वाणी लौट आती है, जिस आनन्द की सीमा मन वाणीसे असम्भव है उस आनन्द को जानकर साधक निर्भय हो जाता है।[1] यहाँ परमात्मा मन वाणी

1. यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥

का विषय नहीं है यह विचार नहीं है। कतिपय सज्जन इस श्रुति के आधार पर सहसा यह कह देते हैं कि ब्रह्म मन वाणी का विषय नहीं है और तुरन्त रामायण का प्रमाण भी दे देते हैं— मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥ किन्तु विचारकगण उपनिषद् को कभी पढें तो पता लगे कि जहाँ यह मंत्र है वहाँ पूर्व प्रसंग क्या है ? यह प्रसंग का उपक्रम है या उपसंहार है।

वस्तुत: यह आनन्द मीमांसा का उपसंहार है जब सभी लोकों के आनन्द की एक सीमा कह दी गई तब ब्रह्मानंद को असीम कह कर प्रसंग का उपसंहार किया गया है। तत्त्वत: सभी लोकों में जो आनन्द है वह ब्रह्मानन्द का स्वल्प अंश है। श्रुति कहती है— 'एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इसी आनन्द के स्वल्पांश से सभी प्राणी आनन्दित होते हैं। इस प्रकार 'यतो वाचो निवर्तन्ते' का तात्पर्य— ब्रह्म, मन वाणी का विषय नहीं, यह नही है किन्तु जिस प्रकार सभी लोकों के आनन्द की सीमा कही गई वैसी सीमा ब्रह्मानन्द की नहीं हो सकती अत: ब्रह्मानन्द असीम है यही श्रुति का तात्पर्य है। तभी तो उसी श्रुति में 'आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्' यह कहा गया है। अर्थात् ब्रह्म के आनन्द को जानकर लोग भय से रहित हो जाते हैं। यदि परमात्मा मन वाणी का विषय नहीं

होता तब ब्रह्म के आनन्द को जानकर अभय होना कैसे कहा जाता ?

मानस में जहाँ ब्रह्म को मन वाणी का अविषय कहा गया है वहीं नेत्र का विषय भी कहा गया है। श्रीजनकजी ने श्रीरामजी की प्रशसा करते हुए कहा है—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा।
... ... ब्यापक ब्रह्म अलख अबिनासी।
चिदानन्द निरगुन गुन रासी।। मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहि सकल अनुमानी ।। ... ...
नयन विषय मो कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल ।।

यहाँ श्रीरामजी के वास्तविक स्वरूप का वर्णन है। यदि मन वाणी के विषय श्रीरामजी नहीं होते तब 'नयन विषय मो कहँ भयउ' यहाँ नयन का विषय श्रीराम जी कैसे होते ? एक ही स्थान में मन वाणी का अविषय तथा नयन का विषय, यह दोनों परस्पर विरुद्ध बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं ? अतः यहाँ भी श्रुति वर्णित अर्थ ही ग्राह्य है अर्थात् मन वाणी जिन प्रभु के स्वरूप को पूर्ण रूप से जानने में समर्थ नहीं हैं। तार्किकगण अकाट्य तर्कों से जिनका ठीक ठीक निरूपण नहीं कर पाते, वे ही सर्वेश्वर प्रभु कृपा करके मेरे नेत्रों के विषय हुये यह आपकी कृपा है।

वस्तुतः साधन सम्पन्न मन वाणी से भी परतत्त्व का निश्चय कठिन है। जब भगवत्कृपा हो तभी वह इन्द्रियों का विषय होता है। गीता में स्पष्ट है— 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' भगवान् प्राकृत मन वाणी के विषय नहीं है किन्तु भगवत्प्रदत्त मन वाणी के विषय हैं। इस प्रकार श्रुति स्मृति में दोनों प्रकार के वाक्य मिलते हैं— 'यतो वाचो निवर्तन्ते' यह भी है तथा दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' यह वाक्य भी है अतः पूर्वोक्त अर्थ ही ग्राह्य है। इसीलिये आलवन्दार स्तोत्र में मन वाणी का विषय तथा अविषय दोनों बातें साथ कही गयी हैं 'मन वाणी के अविषय को नमस्कार है तथा मन वाणी के एकमात्र विषय परमात्मा को नमस्कार है।[1]

श्रीयामुनाचार्यजी कहते हैं—हे नाथ ! आपके एक गुण की सीमा का निश्चय करने के लिये 'शतं शतम्' द्वारा ब्रह्मलोक पर्यन्त आनन्द की सीमा का निश्चय तो श्रुति कर सकी किन्तु आपके एक आनन्द गुण की सीमा नहीं हो सकी।[2] अब देवर्षि नारद उसी परतत्त्व का निरूपण कर रहें हैं। देवर्षि का तात्पर्य है कि श्रीराम को छोड़कर अन्य

---

1. नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये। नमो नमो वाङ्मनसैक भूमये ॥
2. उपर्युपर्यब्जभुवोऽपि पूरुषान्, प्रकल्प्य ते ये शतमित्यनुक्रमात्
गिरस्त्वदेकैक गुणावधीप्सया, सदा स्थिता नोद्यमतोऽति शेरते ॥

किसी भी देवतान्तर में—अन्य देव में ये गुण नहीं हैं। अतः 'बहवो दुर्लभाः' कहना युक्तियुक्त है। प्रश्न काल में भी महर्षि की भगवन्निष्ठा सुस्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है क्योंकि गुणों का कीर्तन कहा गया है।

अब श्रीनारदजी कहते हैं इन गुणों से युक्त एक पुरुष है अर्थात् उस पुरुष के गुण नित्य दिव्य हैं। यदि उनमें गुण कल्पित होते तो 'गुणैर्युक्तः' के स्थान पर 'गुणैः कल्पितः' कहा जाता किन्तु वेदावतार श्रीरामायण में वेदों के सारतम सिद्धान्त का ही निरूपण है। श्रुति कहती है कि परमात्मा में स्वाभाविक ज्ञानबल आदि गुण हैं।[1] अतः परतत्त्व को अनन्त कल्याण गुण गुणों से युक्त कहा गया है। प्राकृत गुणों से रहित होने के कारण ही परमात्मा को निर्गुण तथा नित्य दिव्य सद्गुणों से युक्त होने के कारण सगुण कहा गया है। हे हरे ! सत्त्व रज तम ये तीनों गुण आपसे सदा दूर रहते हैं अतः श्रुति आपको निर्गुण कहती है तथा नित्य निखिल सद्गुणों के सागर, ईश्वरों के ईश्वर होने के कारण श्रुति आपको सगुण कहती है।[2] इस प्रकार की व्यवस्था से दोनों प्रकार के वेद वाक्यों का एक ही परमात्मा

---

1. परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च।
2. दूरे गुणास्त्वयि सत्त्वरजस्तमांसि, तेन श्रुतिः प्रथयति त्वयि निर्गुणत्वम्।
   नित्यं हरे निखिल सद्गुण सागरं हि, त्वामामनन्ति परमेश्वरमीश्वराणाम्॥

में समन्वय भी हो जाता है। अतः परमात्मा को गुणों से युक्त तथा वेद प्रसिद्ध 'पुरुष' कहा। निघण्टुकार नरः, पुरुष को पर्यायवाची मानते हैं— 'पुरुषः पुरुषाः नराः'।

श्रुति कहती है— पुरुष से बढ़कर कोई नहीं है।[1] अतः उपनिषत् प्रतिपाद्य पुरुष की जिज्ञासा होती है।[2] छान्दोग्य में अन्तरादित्य विद्या में पुरुष को हिरण्मय— तेजोमय कहा है।[3] पुरुष सूक्त में पुरुषतत्व का सुस्पष्ट वर्णन मिलता है— 'अतो ज्यायांश्च पूरुषः'। इस प्रकार वेदान्त वेद्य पुरुष ही जिज्ञासा के योग्य है, वही समस्त गुणों का आश्रय है यह उत्तर हुआ। प्रश्न को सुनते ही देवर्षि नारद समाधिस्थ होने लगे। श्रीराम के गुणों का श्रवण करते ही उनकी चेतना खो गई। निरन्तर जिनके गुणों का देवर्षि नारद कीर्तन करते रहते हैं उन्हीं के सम्बन्ध में प्रश्न सुन कर श्रीराघवेन्द्र का रूप सामने आ गया और वही दशा हुई जो श्रीशिवजी की हुई थी— 'मगन ध्यानरस दण्डयुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह। रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

इसलिये देवर्षि महर्षि से कहते हैं कि अभी हम अपने आपको खो बैठे हैं थोड़ी देर में जब हमारी चेतना लौटेगी

---

1. पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः।
2. तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामः।
3. एष अन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते।

तभी मैं कुछ कह सकूंगा— अहं बुद्ध्वा वक्ष्यामि। इस समय हम नारद नहीं है अभी तो मेरे सामने अपने प्रभु का असमोर्ध्व, सौन्दर्य, माधुर्य है अतः मैं नारद बनकर उत्तर दूंगा। 'बुद्ध्वा वक्ष्यामि' का दूसरा तात्पर्य यह भी है कि वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम तत्व नितान्त गुह्यतम है अतः वेदार्थ को भलीभाँति समझकर उत्तर दूंगा।।

वेदान्तवेद्य पुरुषतत्व निरूपण के पश्चात् विशेष जिज्ञासा का सुस्पष्ट उत्तर देते हुए नारद जी कहते हैं— कि समस्त वेदान्त में कथित गुणों के एकमात्र आश्रय, इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न 'श्रीराम' ऐसा जिनका नाम है। जिनको सभी लोग जानते हैं, जिनका स्वभाव निर्विकार सदा एकरस रहता है। वे विचित्र शक्ति सम्पन्न स्वाभाविक प्रकाशयुक्त, धैर्य सम्पन्न एवं सभी को वश में रखने वाले हैं—

'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥

महर्षि वाल्मीकि के प्रश्न अत्यन्त गम्भीर हैं उनका प्रश्न साधारण नहीं है। वे तो देवर्षि के द्वारा वेदान्त वेद्य पुरुषोत्तम तत्व की पुष्टि कराना चाहते हैं। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू के द्वारा ब्रह्मतत्व की प्राप्ति वेदशास्त्र सिद्ध है-- "आचार्यवान् पुरुषो वेद"। महर्षि वाल्मीकि ने

श्रीनारदजी से परतत्व की जिज्ञासा की है। अतः देवर्षि डिमडिम घोष के द्वारा परतत्व का निश्चय करते हैं। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न जिनको साधारण मनुष्य भी जानता है जिनका मधुर मनोहर मंगलमय नाम 'श्रीराम' है वे ही परतत्त्व हैं। समस्त वेदान्त में कहे गये गुणों के आश्रय वे ही हैं। 'पुरुषान्न परं किञ्चित्' पुरुष एवं इदं सर्वम् 'अतो ज्यायांश्च पूरुषः' इत्यादि वेद वाक्यों में जिसे पुरुष कहा जाता है, सद्ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् आदि नामों से शास्त्रों में जिनका वर्णन है वे परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ही हैं। समस्त वेद शास्त्र इन्हीं का प्रतिपादन करते हैं।

'श्रीराम' जिनका नाम है अर्थात् वाचक है। नाम प्रभु का वाचक होता है, वाच्य भगवत्स्वरूप है। वाच्य और वाचक का योग अपेक्षित है।[1] श्रीराम नाम सच्चिदानंद पर ब्रह्म का साक्षात् अभिधा वृत्ति से बोध कराता है। जिस अनन्त सच्चिदानन्द परमात्मा में योगीजन रमण करते हैं उस श्रीराम पद से परब्रह्म का (अभिधावृत्ति से) बोध होता है।[2] श्रीराम नाम परब्रह्म का स्वरूप वाचक नाम है।

---

1 'मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यस्तद्योग एव हि।

2. रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते॥

श्रीराम नाम की महिमा समस्त वेद शास्त्रों में प्रसिद्ध है। श्रीराम नाम में जो रेफ (र्) है इसमें समस्त मन्त्र तथा वेद निवास करते हैं। जिस प्रकार डिब्बे में रखे हुए बहुमूल्य रत्न को अज्ञजन नहीं जानते हैं उसी प्रकार समस्त वेद तथा मन्त्र रकार में भरे हैं किन्तु अज्ञानी जन नहीं जानते, इस रहस्य को विज्ञ जन ही जानते हैं।[1]

श्रीहरि के एक-एक नाम समस्त वेदों के समान हैं ऐसे अलौकिक हजारों हरि नाम के समान एक रामनाम है।[2] पद्मपुराण में शिव पार्वती सम्वाद प्रसिद्ध है।[3] जब से सहस्र हरि नाम के समान श्रीराम नाम की महिमा पार्वती जी ने सुनी है तब से वे सदा श्रीराम नाम का जप करती हैं–सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी॥

महर्षि वाल्मीकि से देवर्षि का यह संवाद लोकोत्तर है। यहाँ श्रीराम नाम से परत्त्व तथा 'इक्ष्वाकु वंश प्रभव' से सौलभ्य कहा गया। परत्त्व, सौलभ्य उपास्य का असाधारण लक्षण हैं। इन दोनों से युक्त श्रीराम को सर्वोपास्य सूचित

---

1. यथा करण्डे रत्नानि गुप्तान्यज्ञैर्न दृश्यते।
   तद्वन्मंत्राश्च वेदाश्च रकारेषु व्यवस्थिताः॥
2. विष्णोरेकैक नामैव सर्ववेदाधिकं मतम्।
   तादृङ्नामसहस्रैस्तु राम नाम समं मतम्॥
3. राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
   सहस्रनामता तुल्यं रामनाम वरानने॥

किया। इक्ष्वाकुवंश प्रभव से भगवान् को वैष्णव पक्षपाती सिद्ध कर रहे हैं। भगवान् भक्तवत्सल हैं, भक्तों पर कृपा करने के लिये ही भगवान् का अवतार होता है। इक्ष्वाकु महराज श्रीवैष्णव थे श्रीरंगनाथ भगवान् को इक्ष्वाकु कुल देवता कहा गया है। श्रीरघुनन्दन ने विभीषण से कहा है– 'इन्द्र आदि देवताओं से पूजित इक्ष्वाकु कुल के देवता श्रीजगन्नाथ भगवान का तुम आराधन करो।[1] श्रीविभीषण जी ने प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य की। श्रीरंगनाथ भगवान् की मूल कथा इस प्रकार है।

जब भगवान् श्रीनारायण ने ब्रह्माजी को सृष्टि करने की आज्ञा दी तब उन्होंने माया से निर्लिप्त रहने के लिये कुछ आधार मांगा तब भगवान् ने अपना साक्षात् विग्रह प्रदान किया। वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु महराज ने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया और विमान के साथ श्रीरंगनाथ भगवान् की मूर्ति प्राप्त की। तभो से श्रीरंगनाथजी अयोध्या में विराजमान हुये और अयोध्या के राजाओं के कुलदेव हुए। श्रीरामजी के समय तक उनकी पूजा होती रही। श्रीराम राज्याभिषेक के समय अयोध्या-काण्ड में श्रीकौशल्याम्बा श्रीविष्णु भगवान् की पूजा कर

---

1. आराधय जगन्नाथमिक्ष्वाकुकुल दैवतम्।
आराधनीयमनिशं देवैरपि सवासवैः।

रहीं थीं ।[1] साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भी अपने कुलदेवता की पूजा करते हैं ।[2] यद्यपि साक्षात् सर्वेश्वर श्रीराम हैं फिर भी अपने ही स्वरूपभूत श्रीरंगनाथ भगवान् की पूजा करते हैं इसका भाव यही है कि क्षत्रिय कुल में अवतार लेकर सामान्य धर्म की शिक्षा देने के लिये ही नारायण की आराधना की है ।

परधाम पधारते समय श्रीराम ने वही अपने कुल देवता श्रीरंगनाथ जी को विभीषण जी को दे दिया । विभीषण जी विमान सहित श्रीविग्रह को लेकर लंका चले तब देवताओं को यह बात पसन्द नहीं आई । मार्ग में कावेरी के द्वीप में चन्द्र पुष्करणी के तट पर विमान उतार कर अपने नित्यकर्म करने लगे । नित्यकर्म समाप्त करने के के पश्चात् जब विमान को उठाना चाहा तब भगवान् नहीं उठे । देवताओं की प्रबल कामना थी कि भगवान् इस प्रदेश से लंका न जाएँ । भक्तवत्सल भगवान् ने ऐसा ही किया । अन्त में भगवान् ने श्रीविभीषण जी को आश्वासन दिया कि मैं दक्षिण की ओर मुख करके यहाँ रहूँगा । कहते हैं आज भी श्रीविभीषणजी गुप्त रूप से श्रीरंगनाथ भगवान्

---

1. कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिताः ।
   प्रभाते त्वकरोत् पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी ।।
2. सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ।

की सेवा पूजा करने आते हैं। इस प्रकार इन सभी विषयों का संकेत 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवः' से किया गया।

'इक्ष्वाकुवंशप्रभव' से सौशील्य तथा 'रामो नाम जनैः श्रुतः' से परत्त्व कहा गया है। जिस प्रकार राजा के छत्र चामर असाधारण गुण हैं उसी प्रकार शरण्य (शरण के योग्य भगवान्) के परत्व तथा सौलभ्य ये दोनों असाधारण गुण हैं। परात्पर प्रभु अपने नित्य धाम से इस भूलोक में शीलगुण के कारण ही अवतार लेते हैं। जो सर्वेश्वर परमव्योम परमधाम में नित्य परिकरों से सेवित पादारविन्द श्रीसीतापति हैं। जिनका ध्यान योगियों को भी नितान्त दुर्लभ है। वे ही सर्वेश्वर पामर जनों के भी नयन गोचर हुए यह उनका शील गुण ही है।

रामायण उत्तरकाण्ड में परधाम स्थित नित्य अवतारी रूप का संकेत मिलता है। अवतारी को दुर्धर्ष, दुर्गम एवं सनातन कहा है[1] इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वावतारी वाङ्मनसागोचर प्रभु शीलगुण के कारण ही अवतार धारण कर सर्वसाधारण निषाद, शबरी, गीध आदि पामर जनों के भी नयन गोचर होते हैं। परधाम में सौलभ्य गुण का विकास सम्यक् नहीं होता है अवतार काल में ही इस गुण का पूर्ण विकास होता है अतएव श्रुति कहती है– 'स उ श्रेयान्

1. ततस्त्वमसि दुर्धर्षात् तस्माद् भावात् सनातनात्।

भवति जायमानः' अर्थात् सर्वेश्वर प्रभु अवतार लेने पर अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि रामायण में सुस्पष्ट है– उन अमित तेजस्वी पुत्र श्रीराम चन्द्र जी से कौशल्याजी अत्यन्त शोभित थीं।[1]

इस श्लोक में 'अमित तेजसा' पद अवतार कालिक उत्कर्ष सिद्ध करता है। पञ्चस्तवीकार ने अवतार की महिमा का वर्णन अत्यन्त समीचीन रूप से किया है। भगवान् की गणना कभी ब्रह्मा शिव तथा कभी सूर्य के मध्य होती है अदिति के पुत्र होने से वे इन्द्र के लघुभ्राता भी कहलाने लगे। इक्ष्वाकुवंश में अवतार लेकर प्रभु की असाधारण महिमा के समक्ष इसका क्या महत्त्व है किन्तु इन अवतारों से उनकी प्रशंसा ही होती है। इनसे उनका सौलभ्य गुण प्रकाशित होता है।[2]

'इक्ष्वाकुवंश प्रभव' से अवतार का प्रयोजन भी कहा गया। सामान्य जनों का यही मत है कि अवतार केवल धर्म की रक्षा तथा अधर्म के नाश के लिये होता है। गीता के द्वारा यही सिद्ध किया जाता है।[3] श्रीराम चरित मानस में भी यही कारण दिया गया है–जब जब होइ धरम कै हानी।.....

---

1. कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा।
2. ब्रह्मेशमध्य गणना गणनार्कपंक्तौ, इन्द्रानुजत्वमदितेस्तनयत्वयोगात् इक्ष्वाकुवंश यदुवंश जनिश्च हन्त, श्लाघ्यान्यमून्यनुपमस्य परस्य धाम्नः।
3. यदा यदा हि धर्मस्य.....संभवामि युगे युगे।

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥ असुर मारि आपहिं सुरन्ह·····राम जनम कर हेतु। वस्तुतः अवतार का मुख्य प्रयोजन है साधु परित्राण तथा धर्म की रक्षा, अधर्म का नाश तो गौण प्रयोजन है। जिस परमात्मा के संकल्प से समस्त प्रपञ्च का उद्भव तथा विनाश होता है उसको धर्म की रक्षा तथा अधर्म के नाश के लिए अवतार का क्या प्रयोजन है ?

यदि परमात्मा परधाम में स्थित होकर संकल्प कर देता कि 'सर्वे धर्मात्मानो भवन्तु' तो सभी धर्मात्मा हो सकते थे। जो सर्व प्रेरक है वह केवल बुद्धि को प्रेरित कर सभी चेतनों को सन्मार्ग की ओर लगा सकता था। साथ ही 'सर्वे राक्षसा म्रियन्ताम्' यह संकल्प करते ही सभी राक्षस मर जाते। व्यर्थ में अस्त्र शस्त्रों से युद्ध की क्या आवश्यकता थी इत्यादि तर्कों से अवतार का प्रयोजन केवल धर्म की रक्षा तथा अधर्म का नाश प्रतीत नहीं होता है। यहाँ परित्राण का अर्थ है-- 'परितः त्राण' अर्थात् जो सन्त भगवान् के दर्शन स्पर्श के बिना व्याकुल रहते हैं। जो भक्त भगवान् के साथ ही भोजन शयन विहार आदि करते हैं तथा उनके वियोग में जिन भक्तों को मायिक सुखोपभोग आकृष्ट करने में समर्थ नहीं हैं ऐसे ही भक्तों के लिये भगवान् को अवतार लेना पड़ता है।

सत्यतः भक्तों को प्रेमरस प्रदान करने के लिये ही सच्चिदानन्दघन प्रभु का अवतार होता है। भागवत में सुस्पष्ट हैं— 'परमहंस अमलात्मा योगीन्द्र मुनीन्द्रों को सरस भक्ति रस प्रदान करने के लिये ही भगवान् का अवतार होता है।[1] गीता के 'विनाशाय च दुष्कृताम्' में 'च' शब्द अन्वाचय–गौण है। इसी प्रकार मानस में भी–एक अनीह अरूप अनामा। ... ... सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥ यहाँ पर केवल भक्तों के हित के लिये ही अवतार लेना कहा गया है। 'केवल' शब्द उपर्युक्त अर्थ को सिद्ध कर रहा है। निष्कर्ष यह है कि अन्य सभी कार्य संकल्प से सम्भव हो सकते हैं किन्तु श्रीकौशल्याम्बा प्रभृति भक्तों की गोद को विभूषित करना संकल्प से संभव नही अतः गोस्वामीजी ने कहा—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद॥

जहाँ एक भक्त के कारण भगवान् का अवतार लेना सिद्ध होता है वहाँ इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न होने वाले सभी राजागण भगवान् के पूर्ण भक्त हुए हैं। अतः भगवान् के अवतार योग्य ऐसा पवित्र वंश अन्यत्र दुर्लभ था। एक हो वैष्णव

---

1. तथा परमहंसानां मुनीनामलात्मनाम्। भक्तियोग विधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

सम्पूर्ण कुल को पवित्र कर देता है ।[1]

'सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुवीर परायन जेहिं नर उपज विनीत ॥

यद्यपि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने से सौलभ्य गुण का ही प्राधान्य है फिर भी अनेकों स्थलों पर अतिमानुष ऐश्वर्य का पूर्ण प्रकाशन है । जनैः श्रुतः इस पंक्ति से विश्वामित्र यज्ञ रक्षण, अहल्योद्धार, शैवधनुर्भङ्ग, परशुराम पराजय आदि समस्त भगवत्ता सूचक चरित्रों का संकेत है । जिस प्रकार त्रिवेणी में सरस्वती का प्रवाह गुप्त रहता है उसी प्रकार श्रीरामायण में ऐश्वर्य गुप्त है किन्तु कहीं कहीं व्यक्त भी है । श्रीमद्वाल्मीकि रामायण को आदिकाव्य कहा गया है । शक्यार्थ प्रधान वेद माना जाता है किन्तु काव्य में लक्ष्यार्थ की ही प्रधानता होती है । इस सिद्धान्त के अनुसार लक्ष्यार्थ द्वारा ऐश्वर्य माधुर्य का रामायण में मधुर वर्णन मिलता है ।

वाल्मीकि रामायण वेदावतार हैं यह पूर्व में कहा जा चुका है । जिस प्रकार वेदार्थ का निश्चय करना कठिन है उसी प्रकार रामायण के तात्पर्य का निरूपण भी कठिन कार्य है । वेदों के अनुसार ही अनेक स्थलों में कुछ असम्बद्ध

---

1. कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या ।
स्वर्गस्थितास्ते पितरोऽपि धन्याः येषां कुले वैष्णवनामधेयः ॥

बातें भी मिलती हैं जिनका समन्वय आवश्यक है। शब्दों की अपेक्षा अर्थ का अधिक महत्त्व है। अर्थ करने में ग्रन्थ के पूर्वापर सभी स्थलों पर विचार करना पड़ता है। किसी भी ग्रन्थ के तात्पर्य को एक श्लोक एक मंत्र अथवा एक दो वाक्यों से नहीं समझा जा सकता क्योंकि ग्रन्थ में कहीं पूर्व पक्ष है कहीं-कहीं उत्तर पक्ष कहीं अन्य आवश्यक जिज्ञासायें हैं अतः स्वल्प श्लोकों से तात्पर्य का निर्णय करना कठिन है। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर हमारे भारतीय दार्शनिकों ने ग्रन्थ के तात्पर्य निर्णय के लिये छह वाक्य स्वीकार किये हैं। जिन्हें उपक्रम उपसंहार आदि षड्विध तात्पर्य निर्णायक लिङ्ग कहते हैं अर्थात् उपक्रम उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद एवं उपपत्ति इन छह वाक्यों द्वारा तात्पर्य का निर्णय करना चाहिए।[1]

यद्यपि उपक्रम उपसंहार ये सभी मिलकर सात लिंग (वाक्य) हो जाते हैं किन्तु उपक्रम और उपसंहार दोनों की एकवाक्यता है अर्थात् उपक्रम उपसंहार दोनों मिलकर एक ही वाक्य माने जाते हैं अतः छह वाक्य ही ठीक हैं। इन्हीं छह वाक्यों से श्रीरामायण के तात्पर्य का भी निर्णय करना चाहिए। श्रीमद्रामायण के उपक्रम में ही "रामो नाम

---

1. उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्य निर्णये॥

जनैः श्रुतः" इस वाक्य से श्रीराम को रामायण का प्रतिपाद्य देवता बताया गया है। उपक्रम उपसंहार की एकवाक्यता का तात्पर्य ही यह है कि यदि उपक्रम में प्रतिपाद्य तत्त्व में कोई संदेह रह जाय तो उपसंहार में उसका विशद विवेचन किया जाता है।

श्रीरामायण के उपक्रम में कोई सन्देह नहीं है क्योंकि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ तत्त्वज्ञ गुरू रूप से देवर्षि नारद डिमडिम घोष द्वारा घोषणा कर रहे हैं कि परतत्त्व का नाम श्रीराम है– 'रामो नाम जनैः श्रुतः' यदि कोई अन्य प्रतिपाद्य देवता हो तो उसी का नाम कहा जाता किन्तु ऐसा नहीं किया गया केवल श्रीराम का नाम ही कहकर देवर्षि शान्त नहीं हुए अपितु उनके अनेक गुणों का वर्णन करने लगे– महर्षे! श्रीरामभद्र नियत स्वभाव वाले (निर्विकार) अत्यन्त बली स्वयं प्रकाश-ज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप सभी को वश में रखने वाले सभी के स्वामी हैं।

श्रीराम सर्वज्ञ, मर्यादापालक, वेदप्रर्वतक, उभय विभूति नायक, शत्रुनाशक हैं। उन्नत स्कन्ध, पुष्ट सुडौल भुजा तथा शंख के समान रेखा युक्त ग्रीवा वाले हैं। उनके कपोल के ऊपर का भाग— हनु पुष्ट है। श्रीराघवेन्द्र का वक्षःस्थल विशाल है। उन्होंने अपने कर कमल में विशाल धनुष धारण कर रखा है। उनके गले के नीचे की अस्थि-पसली

'जत्रु' मांस से ढका है । वे समस्त पापों के नाशक हैं, उनको भुजायें घुटनों तक लम्बी हैं । शिर गोल छत्र के आकार का है तथा ललाट अर्धचन्द्राकार एवं उन्नत है । उनकी चाल-गति अति सुन्दर है ।[1]

श्रीराघवेन्द्र सम हैं, उनके सभी अवयव परस्पर अलग-अलग हैं । श्रीविग्रह स्निग्ध, चिक्कण व तेजस्वी है सर्वांग शोभा सम्पन्न है, वक्षःस्थल पुष्ट व पीन हैं । नेत्र कमल के समान बड़े-बड़े हैं । लक्ष्मीवान्-नख से शिखा तक सर्वांग सुन्दर हैं । शुभलक्षण, सौन्दर्य माधुर्य के सागर तथा समस्त शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त हैं । धर्मज्ञ, सत्यसन्ध व प्रजाओं के हितकारी हैं । यशस्वी, ज्ञान सम्पन्न, पतित पावन, भक्त परतन्त्र एवं आश्रितों की चिन्ता करने वाले हैं । प्रभु प्रजापति के समान, श्रीसीताजो के साथ सदा विराजमान रहने वाले तथा जगत् के पोषक एवं आश्रितों के विरोधियों का नाश करने वाले हैं ।[2]

---

1. वुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥

2. समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हितेरतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ॥

श्रीराघव जीवलोक के रक्षक, धर्म के रक्षक, अपने धर्म के रक्षक एवं अपने जनों के विशेष रक्षक हैं। वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता तथा धनुर्वेद में परम प्रवीण हैं। वे सभी शास्त्रों के तत्वों के ज्ञाता तथा स्मृति एवं प्रतिभा से युक्त हैं।[1] श्रीराम सर्व लोकप्रिय और साधु हैं। उनकी प्रकृति अत्यन्त गम्भीर है। वे विचक्षण–विविध विषयों के कुशल वक्ता हैं। जिस प्रकार समुद्र सदा नदियों से घिरा रहता है उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्र सन्त महापुरुषों से घिरे रहते हैं। श्रीरघुनन्दन जाति गुण विद्या आदि तारतम्य के बिना प्राणिमात्र के अभिगमन के योग्य अर्थात् आश्रय के योग्य हैं। प्राणिमात्र उनकी शरण में जा सकते हैं। उनकी सुन्दरता सदैव एकरस नित्य नवीन बढ़ती रहती है — वे सदैव एकमात्र प्रियदर्शन हैं। श्रीकौशल्याम्बा के आनन्द का वर्धन करने वाले श्रीरामभद्र अनन्त कल्याण गुणों से युक्त हैं।[2] इन

---

1. रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।
   रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता॥
   वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।
   सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्॥
2. सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।
   सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः॥
   आर्यः सर्वसमश्चैव सदैकप्रियदर्शनः।
   स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्द्धनः॥

सभो श्लोकार्थों की विस्तृत, प्रसन्न, मधुर, गम्भीर व्याख्या– "वाल्मीकि रामायण एक मीमांसा" ग्रन्थ में देखनी चाहिये।

इस प्रकार षोडश प्रश्नों के उत्तर में देवर्षि नारद ने विस्तार से सभी प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देते हुए कहा श्रीरामजी के समस्त गुणों का वर्णन सम्भव नहीं है अतः कुछ गुणों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः कौसल्या नन्दवर्धन समस्त कल्याण गुणों से युक्त हैं। जो गुण कहे गये तथा जिन गुणों का वर्णन नहीं किया गया वे सभी उक्तानुक्त अनन्त कल्याण गुण गण सागर श्रीरघुनन्दन हैं। जिस प्रकार तीर चलाने वाला तोरन्दाज बाण विद्या विशारद आकाश में तीर चलाने की जगह की कमी से नहीं लौटता किन्तु बाण के अभाव में लौटता है। उसी प्रकार वर्णन शक्ति शिथिल होने के कारण ही वक्ता गण प्रभु के गुणों का वर्णन नहीं कर पाते, प्रभु में गुणों का अभाव नहीं है।[1] इस प्रकार कोटि-कोटि कल्पों तक शेष आदि कोटि-कोटि मुख से श्रीराघवेन्द्र के गुणों का गान करें तब भी प्रभु के गुणों का अन्त सम्भव नहीं है।

एतावता गुण वर्णन कर लेने पर भी नारद जी का मन तृप्त नहीं हुआ अतः पुनः उनकी अपार महिमा का

---

1. इषुक्षयान्निवर्तन्ते नान्तरिक्षक्षितिक्षयात्।
मतिक्षयान्निवर्तन्ते न गोविन्दगुणक्षयात्॥

दृष्टान्त साम्य द्वारा गान करने लगे। मुने ! श्रीरामचन्द्रजी समुद्र के समान गम्भीर, हिमवान् के समान धैर्यसम्पन्न-अचल, श्रीविष्णु के समान पराक्रमी, चन्द्रमा के समान सुन्दर, भक्ति विरोधियों को भस्म करने में कालाग्नि के समान, पृथिवी के समान क्षमाशील, धनद के समान दानी तथा सत्यनिष्ठा में साक्षात् धर्म के समान हैं।[1] श्रीगोविन्द-राज का मत है– श्रीराघवेन्द्र के समान कोई नहीं हैं।[2] उनसे अधिक कोई कैसे हो सकता है ? श्रुति भी कहती हैं- 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'। मानसकार के शब्दों में भी– 'जेहि समान अतिसय नहिं कोई'। लोक में जितनी उत्कृष्ट वस्तुएँ हैं उनसे श्रीराघवेन्द्र की समता करते हुए उनके समान एवं अतिशय का निषेध करते हैं।

समुद्र की गम्भीरता यही है कि वह अपने अभ्यन्तर में विद्यमान रत्न आदि को छिपाये रहता है शीघ्र प्रकट नहीं करता। उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्र भी अपने परत्त्व को प्रकाशित नहीं करते हैं। युद्धकाण्ड में प्रभु ने ब्रह्माजी से

---

1. समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः॥
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः॥

2. अथास्य निस्समाभ्यधिकत्वं वक्तुं लोके प्रकृष्ट वस्तूनां तदेकैक गुण साम्यमाह–समुद्र इवेत्यादि श्लोकद्वयेन।

कहा है- मैं तो दशरथनन्दन राम के रूप में स्वयं को मनुष्य ही मानता हूँ। मेरा स्वरूप, सम्बन्ध तथा प्रयोजन आप ही बतलाइये।[1] तब ब्रह्माजो ने 'भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः' से लेकर तोस श्लोकों में श्रीराघवेन्द्र की महिमा का वर्णन किया है जो 'ब्रह्मस्तव' के नाम से प्रसिद्ध है।

शोक के हेतु रहने पर शोक रहित रहना धैर्य कहा गया है। इसीलिये प्रभु को धैर्य में हिमवान् पर्वत के समान कहा गया है। जिस प्रकार वर्षा की धारा से पर्वत व्यथित नहीं होता है उसी प्रकार अनेकों कष्टों के उपस्थित होने पर भी भगवान् का चित्त व्यथित नहीं होता।[2] 'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥ 'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः' इस श्लोक में भी प्रभु के धैर्य की ही प्रशंसा की गयो है।

वीर्य में श्रीराघवेन्द्र विष्णु भगवान् के समान हैं जब कभी देवताओं को असुरगण पीड़ा पहुंचाते हैं तब भगवान् विष्णु ही असुरों को मारकर देवताओं की रक्षा करते हैं।

---

1. आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
   योऽहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे॥
2. गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
   अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षज चेतसः॥

श्रीरामायण में स्थल स्थल पर श्रीराघव को 'विष्णुतुल्य पराक्रमः' कहा गया है। श्रीराघवेन्द्र चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा ताप का हरण कर लोगों को शीतलता एवं आह्लाद प्रदान करता है उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी भी अपने भक्तों के त्रितापों का हरण कर अपने दर्शन से शीतलता एवं आह्लाद प्रदान करते हैं– 'हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचित किरन मनोहर हासा। रामचन्द्र मुखचन्द्र छवि लोचन चारु चकोर। करत पान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर॥

वैसे तो श्रीरामभद्र जितक्रोध हैं किन्तु यदि कोई उनके भक्त को पीड़ा पहुँचाता है तब प्रभु कालाग्नि के समान क्रुद्ध हो जाते हैं। अपने प्रति किये गये अपराध को श्रीरामभद्र स्वयं सहन करते हैं किन्तु अपने आश्रितों के प्रति किये गये अपराधों को देखते ही कोटि कोटि कालानल के समान हो जाते हैं।

वास्तव में प्रभु समस्त दिव्य कल्याण गुणगणों से सर्वदा सम्पन्न रहते हैं। क्रोध भी प्रभु को पाकर दिव्य हो जाता है। क्रोध भी प्रभु का वरदान ही है — 'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः' रावण आदि राक्षसगण प्रभु के कोप रूपी वरदान को प्राप्त कर नित्यधाम में विराजमान हैं। यदि कोई प्रभु का अपकार करता है तो उसे वे पृथिवी के

समान—अचेतन को भाँति सहन कर लेते हैं। अयोध्या-काण्ड में स्पष्ट है — जैसे तैसे भी स्वल्प उपकार स्मरण करने वाले, भक्तों के प्रति निरन्तर अनुग्रह की वर्षा करते रहते हैं तथा भक्तों द्वारा किये गये कोटि-कोटि अपराधों का कभी स्मरण भी नहीं करते।[1] 'देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने'।

त्याग में प्रभु धनद–कुबेर के समान हैं त्याग का अर्थ यहाँ उन्मुक्त हस्त से दान देना है। श्रीराघवेन्द्र के समान दानिशिरोमणि भूतकाल में न कोई हुआ न भविष्य में होगा श्रीगोस्वामीजी ने गीतावली में स्पष्ट कहा है – 'एकै दानि शिरोमणि साँचो'। इस सम्पूर्ण पद में प्रभु की लोकोत्तर दान शीलता का अद्भुत बर्णन है। सखाओं के साथ कन्दुक क्रीड़ा करते समय अपनी पराजय तथा श्री भरतलाल जी की विजय पर प्रभु ने असंख्य हाथी घोड़े, वसन भूषण आदि न्यौछावर कर दिये। विवाह महोत्सव पर दिये गये दानों का विशद वर्णन सभी रामायणों में है। वन यात्रा के अवसर पर दिये गये दानों का विस्तृत वर्णन वाल्मीकि रामायण में है। राज्याभिषेक, होली, झूलन आदि महोत्सवों पर दिये गये दानों का वर्णन गीतावली में देखने योग्य है।

---

1. न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।

रघुनन्दन सत्य वचन में सर्वश्रेष्ठ धर्म देवता के समान हैं। श्रीराम को विग्रहवान् धर्म कहा गया है–'रामो विग्रहवान् धर्मः'। 'समुद्र इव गाम्भीर्ये' से लेकर 'सत्ये धर्म इवापरः' पर्यन्त दो श्लोकों से श्रीराघवेन्द्र के असाधारण परत्त्व का वर्णन किया गया — श्रीराम समुद्र के समान गम्भीर हिमाचल के समान धीर भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी एवं चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन हैं। इसी प्रकार अन्य उत्कृष्ट वस्तुओं की समता द्वारा प्रभु के स्वसमाभ्यधिक शून्य — अपने समान एवं अधिक से रहित ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है।

यद्यपि श्रीराघवेन्द्र की गम्भीरता को समुद्र के समान कहना एक प्रकार से हास्यास्पद है। कोटि-कोटि समुद्रों के साथ अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके एक-एक रोम में विद्यमान हैं उनको समुद्र के समान गम्भीर कहना एक शास्त्रीय विवेचन शैली द्वारा प्रभु के अनन्त गुणों की ओर संकेत मात्र करना है समानता का भाव नहीं है। इसीलिये श्री गोविन्दराज ने स्पष्ट किया है — वस्तुतः यहाँ समुद्र आदि का उपमान होना सर्वथा असम्भव है फिर भी पाठकों को समझाने के लिये ऐसा कहा गया है – जैसे बाण के समान सूर्य चलता है। बाण की अपेक्षा सूर्य की गति अत्यन्त तीव्र है फिर भी लोगों की दृष्टि में बाण तीव्रगामी है अतः सूर्य की गति की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये बाण की

गति से तुलना की गई है ।

इस प्रकार समुद्र, हिमवान्, चन्द्र आदि तथा श्रीविष्णु भगवान् से भी श्रीराघवेन्द्र कोटि-कोटि गुणित श्रेष्ठ हैं यही इस प्रकरण का वास्तविक अर्थ है । इसी अर्थ को ध्यान में रखकर गोस्वामीजी ने कहा है -- 'हिमगिरि कोटि अचल रघुत्रीरा । सिंधु कोटि सत सम गम्भीरा ॥ ··· ··· विष्नु कोटि मम पालनकर्ता । रूद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥ ····· भार धरन सत कोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥ निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहैं । जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहैं ॥" गोस्वामीजी ने पूर्व में महर्षि के शब्दों को किञ्चित् व्याख्या कोटि सम कहकर की । हमारी दृष्टि में वेद सूत्रों का व्याख्यान करने वाला--'वेदोपबृंहण' ग्रन्थ श्रीरामायण है उसी प्रकार रामायण की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ श्रीरामचरित मानस है अतएव गोस्वामीजी महर्षि के सूत्र-रूप स्थलों की व्याख्या करते हैं । इसीलिये यहाँ भी श्री राघवेन्द्र को करोड़ों हिमगिरि के समान अचल, शत-कोटि सिन्धु के समान गम्भीर, शतकोटि विष्णु के समान पालनकर्ता, शतकोटि रूद्रसम संहर्ता, शतकोटि शारदा के समान बुद्धिमत्ता तथा शतकोटि ब्रह्मा के समान सृष्टि निपुणता आदि कहने के पश्चात् निरवधि अवधि – सीमा

रहित एवं निरुपम उपमारहित कहा तथा साथ ही लोगों को सावधान भी किया कि शतकोटि विष्णु, शिव ब्रह्मा, शारदा आदि की समता उसी प्रकार है जिस प्रकार शत-कोटि खद्योत (जुगनू) से सूर्य की समता की जाए।

रामायण अयोध्याकाण्ड में भी श्रीराम को सूर्य का सूर्य, अग्नि का अग्नि एवं प्रभु का प्रभु कहा है।[1] उत्तर-काण्ड में– 'विष्णुत्वमुपजग्मिवान्'– ब्रह्मा की प्रार्थना पर परवासुदेव स्वरूप श्रीराघवेन्द्र ने जगत् का पालन करने के लिये विष्णुरूप धारण किया। श्रीगोविन्दराज ने भी श्रीराघवेन्द्र को परवासुदेव स्वीकार किया है अतः उनके मत से भी परवासुदेव स्वरूप श्रीराघवेन्द्र ब्रह्माण्ड के संचालक त्रिदेवों से श्रेष्ठ हैं यह उचित ही है।

श्रीपरशुराम पराजय की अद्भुत घटना श्रीराम के अतुलित पराक्रम और विष्णुत्व को प्रकट करने वाली है। जब परशुरामजी ने श्रीराघवेन्द्र को गर्व सहित वैष्णव धनुष चढ़ाने को कहा तब श्रीराम ने खेल-खेल में धनुष चढ़ा दिया और कहा – भगवन् आप ब्राह्मण हैं तथा मेरे गुरूदेव श्रीविश्वामित्रजी के सम्बन्धी हैं-- श्रीविश्वामित्रजी की बहन सत्यवती से ऋचीक महर्षि द्वारा जमदग्नि प्रकट हुये। जमदग्नि के पुत्र श्रीपरशुरामजी हैं। इस प्रकार

---

1. सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।

श्रीविश्वामित्रजी के भानजे के पुत्र हुए। अतः इस बाण से आपके प्राणों का हरण कर सकता हूँ किन्तु ब्राह्मण एवं विश्वामित्रजी के सम्बन्धी होने के कारण आपके प्राणों को छोड़ देता हूँ तथापि आपकी गति को अथवा आपके तप से अर्जित पुण्यलोकों में से किसी एक का हरण अवश्य करूंगा। यह वैष्णव शर दिव्य है व्यर्थ नहीं जा सकता अब यह धनुष पर चढ़ गया है अतः कहीं छोड़कर ही इसे शान्त कर सकता हूँ।

श्रीराघवेन्द्र के इस अद्भुत पराक्रम को देखने के लिये पितामह के साथ सभी देव गन्धर्व किन्नर यक्ष राक्षस नाग ऋषि आदि गगनमण्डल में उपस्थित हो गये। श्रीरामजो ने परशुरामजी को जड़ – वीर्यहीन कर दिया फिर तो परशुरामजी श्रीराम को देखते ही रह गये। नृसिंह पुराण में कहा गया है कि सभी देवताओं के देखते देखते परशुराम जी के शरीर से निकलकर एक विशिष्ट तेज श्रीरामजी के मुख में प्रविष्ट हो गया।[1]

परशुरामजी ने प्रभु से प्रार्थना की नाथ ! मेरे लोकों का ही आप हरण करें जो आपकी भक्ति में बाधक हैं हमारी गति का हरण न करें क्योंकि मैंने सारी पृथिवी

---

1. ततः परशुरामस्य देहान्निर्गत्य वैष्णवम्।
पश्यतां सर्वदेवानां तेजो राममुपाविशत्॥

राजाओं से जीतकर कश्यप महर्षि को दे दी है अतः रात्रि में मैं इस पृथिवी पर नहीं रह सकता। महर्षि कश्यप के वचन को मैं पूर्ण करना चाहता हूँ अतः मैं मन की गति के समान शीघ्र महेन्द्र पर्वत पर चला जाऊंगा।

श्रीपरशुरामजी कहते हैं मैं जानता हूँ कि मधु राक्षस का वध करने वाले साक्षात् मधुसूदन आप ही हैं। इस वैष्णव धनुष को चढ़ाते ही मैं आपको जान गया।[1] ये देवतागण आपके अप्रतिम पराक्रम को देख रहे हैं किन्तु आप त्रिलोकी नाथ से पराजित होने के कारण मुझे तनिक भी लज्जा नहीं है। तात्पर्य यह है कि यदि मैं मनुष्य देव गन्धर्वादि शक्तियों से पराजित होता तो लज्जा होती। स्वामी के साथ पराजय कोटि कोटि गुणित विजयश्री से भी उत्कृष्ट है।[2]

अयोध्याकाण्ड में भी स्पष्ट है कि दुष्ट रावण के वध के लिये देवताओं की प्रार्थना पर साक्षात् सनातन श्रीविष्णु भगवान् प्रकट हुए हैं।[3] उत्तर काण्ड में 'सीता लक्ष्मीः भवान् विष्णुः' आदि श्लोक श्रीराम एवं श्रीविष्णु की

---

1. अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरोत्तमम्।
   धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप॥
2. न चेयं मम काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
   त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः॥
3. स हि देवैरूदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
   अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥

एकता के समर्थक हैं। इस प्रकार मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद एवं उनके व्याख्यान रूप इतिहास पुराण आदि समस्त शास्त्रों में श्रीराम विष्णु का अभेद प्रतिपादित है किन्तु यहाँ केवल कारण कार्य का भेद कहा गया है। श्रीराम कारण हैं विष्णु कार्य हैं तत्त्वतः दोनों अभिन्न हैं। रस वैचित्रो के भेद का रसास्वादन प्रस्तुत प्रसंग में 'विष्णुना सदृशो वीर्ये' इस पंक्ति द्वारा किया गया।

इस प्रकार देवर्षि श्रीरामचन्द्रजी के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए शनैः शनैः संक्षेप में सम्पूर्ण श्रीराम कथा कह गये। अतः उपक्रम में स्पष्ट रूप से श्रीरामजी का प्रतिपादन है। उपसंहार में भी श्रीरामजी का ही प्रतिपादन है। यहाँ भी श्रीराघवेन्द्र को परवासुदेव कहा गया है। पर वासुदेव से ही ब्रह्मा विष्णु महेश उत्पन्न होते हैं वे ही परम व्योम नित्य धाम में नित्य मुक्तों द्वारा उपास्य हैं। पर वासुदेव सर्वावतारी श्रीराम से ही नारायण आदि रूपों का प्राकट्य होता है। श्रीरामायण का यह सिद्धान्त श्रीवैष्णव सम्प्रदाय सम्मत है। पाञ्चरात्र आगमों में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है। पर, व्यूह, वैभव, अन्तर्यामी तथा अर्चा के भेद से पूर्वाचार्यों ने भगवान् के पाँच स्वरूपों का वर्णन किया है।

परस्वरूप सर्वावतारी नित्य मुक्तों के उपास्य पर

वासुदेव के नाम से कहे जाते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ये चार भगवान् के व्यूह अवतार हैं। भगवान् के अन्य सभी अवतार वैभव के नाम से कहे जाते हैं। चराचर प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट होकर मन बुद्धि आदि के नियामक सर्व प्रेरक रूप को अन्तर्यामी कहते हैं। मणि कांचन आदि विग्रहों द्वारा विविध मन्दिरों में प्रकट रूप से विराजमान रूप को अर्चावतार कहते हैं। यद्यपि भगवान् के पाँचों रूप पूर्ण हैं तदपि पररूप का महत्त्व सर्वत्र स्वीकार किया गया है।

सौलभ्य के कारण कहीं कहीं अवतारी से भी अवतार की उत्कृष्ट महिमा कही गयी है। कहीं कहीं पाँच रूपों में अर्चावतार की ही उत्कृष्टता कही गई है। इस प्रकार सभी रूप समान रूप से पूर्ण हैं किन्तु कार्य कारण के भेद से पररूप सभी का कारण है यह भी निर्विवाद है। पररूप में ही कारणता है, वे ही रूप नित्य मुक्तों से उपास्य हैं। अस्तु उपसंहार में श्रीराम तत्त्व का वर्णन पररूप में किया गया है। उत्तरकाण्ड के १०४ सर्ग में प्रायः आठ श्लोकों में असाधारण रूप से श्रीराम तत्त्व का वर्णन है।

श्री ब्रह्माजी कहते हैं पूर्व में समस्त चराचर जीवों का संहार कर महार्णव (महासमुद्र) में शयन कर केवल अपनी विचित्र अलौकिक शक्ति से आपने मुझ ब्रह्मा

को उत्पन्न किया।[1] इस श्लोक में 'त्वं अजीजनः' आपने मुझे उत्पन्न किया यह वाक्य विचारणीय है। यहाँ 'युष्मद् त्वं' शब्द से श्रीराम को ही कहा जा रहा है कि आप ही महार्णवशायो हैं। यदि कहा जाय कि महार्णवशायी तो श्रीमन्नारायण हैं श्रीराम नहीं ? तो इसका उत्तर देते हैं – आप ही नारायण रूप धारण कर महासमुद्र में शयन करते हैं।[2]

जब नारायण रूप से आपने मेरी सृष्टि की और मुझ को यह कार्य सौंपा तब मैंने आपसे प्रार्थना की कि भगवन्! आपकी कृपा से सृष्टि का कार्य तो मैं संभाल लूंगा किन्तु सृष्टि की रक्षा का कार्य सबसे जटिल है यह कार्य कौन करेगा ? सृष्टि तथा संहार ये दोनों कार्य आपके आश्रय से हम लोग कर सकते हैं किन्तु रक्षा का कार्य तो आप ही कर सकते हैं।[3] जब मैंने आप से यह प्रार्थना की तब आपने सनातन भाव अर्थात् सर्वावतारी परवासुदेव से श्रीविष्णुरूप धारण किया।[4] भूषणकार का तात्पर्य है कि परवासुदेव

---

1. संक्षिप्य हि पुरालोकान् मायया त्वमेव हि।
   महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥
2. त्वमेव नारायण रूपेण महार्णवशायी।
3. सोऽहं संन्यस्त भारो हि त्वामुपासे जगत्पतिम्।
   रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
4. ततस्त्वमपि दुर्धर्षात्तस्माद् भावात् सनातनात्।
   रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥

स्वभाव से सभी प्राणियों की रक्षा के लिये विष्णु रूप धारण किया गया है यह रूप अत्यन्त दुर्ज्ञेय तथा नित्य है। अथवा वासुदेव विग्रह से अदिति द्वारा विष्णु रूप धारण किया।

ब्रह्माजी श्रीरामजी से स्पष्ट कह रहें हैं कि परवासुदेव आप ही हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के मध्य में सर्वप्रथम विष्णु रूप से आप ही अवतीर्ण हुए हैं। इस प्रकार उपक्रम उपसंहार दोनों स्थलों में असंदिग्ध रूप से श्रीराम जी का असाधारण परत्त्व मिलता है। उपसंहार में एक बात और भी सुस्पष्ट है - श्रीराम रूप से ही परधाम (त्रिपाद् विभूति) गमन श्रीराम रूप की सर्वकालिक सत्ता सिद्ध करता है। यदि श्रीराम श्रीविष्णु के अवतार मात्र होते तो चतुर्भुज रूप से ही परधाम की यात्रा करते किन्तु रामायण में स्पष्ट है– भ्राताओं के साथ अपने दिव्य शरीर से ही भगवान् परधाम गये— 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः'। 'सशरीरः सहानुजः' यह वाक्य रामायण में श्रीरामजी की परात्परता का द्योतक है साथ ही श्रीविग्रह की नित्यता का भी परिचायक है।

अन्य पुराणों में अन्य अवतारों के सम्बंध में ऐसा प्रबल प्रमाण नहीं मिलता प्रत्युत् सभी स्थानों से चतुर्भुज रूप से ही परधाम गमन प्रायः मिलता है। श्रीमद्भागवत में परधाम यात्रा के समय श्रीकृष्ण भगवान् ने चतुर्भुज रूप

धारण किया था– 'बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपम्'। श्रीरामायण में 'सशरीरः सहानुजः' इस वाक्य से सिद्ध होता है कि भगवान् द्विभुज रूप से ही परधाम गये। श्रीभरत आदि भ्रातागण भी अपने अपने शरीर के साथ ही परधाम गये। भगवान् के तथा सभी भ्राताओं के विग्रह नित्य एवं दिव्य हैं।

प्रभु के सभी अवतार नित्य दिव्य हैं। अवतार के श्रीविग्रह भौतिक नहीं हैं अप्राकृत हैं[1] यह वाक्य सभी अवतारों को नित्य दिव्य सिद्ध करता है किन्तु 'सशरीरः सहानुजः' यह श्रीरामायण का वाक्य स्वतन्त्र रूप से श्रीरामजी के विग्रह को नित्य सिद्ध करता है साथ ही भ्राताओं को भी नित्य सिद्ध करता है। वेदावतार श्रीरामायण का यह 'औपसंहारिक' वाक्य अवश्य विचारणीय तथा मननीय है।

वेद में भी द्विभुज रूप की ही जिज्ञासा है– 'किं बाहू ? अर्थात् सर्वेश्वर परमात्मा की भुजायें कैसी हैं ? उत्तर में कहा गया– 'बाहू राजन्यः कृतः'--परमात्मा की भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। इस मंत्र में 'बाहू' शब्द द्विवचन है। इससे स्पष्ट होता है कि द्विभुज रूप ही पररूप है। इसी

---

1. सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादान रहिताः नैव प्राकृताः क्वचित्॥

रहस्य को वेदावतारभूत श्रीरामायण स्पष्ट कर रहा है कि जगत्कारण परतत्व श्रीराम हैं। श्रीराम ही नारायण हैं, वे ही श्रीकृष्ण, वाराह, नृसिंह, मधुसूदन हैं। जो भी नाम हैं जो भी रूप हैं सभी का पर्यवसान श्रीराम में ही है। इस प्रसंग में जितने भी नारायण मधुसूदन आदि नाम आये हैं वे सभी श्रीराम के विशेषण हैं विशेष्य तो श्रीराम ही हैं। अथवा ऐसा कहें कि श्रीराम उद्देश्य हैं तथा और सभी विधेय हैं।

इस प्रकार उपक्रम उपसंहार आदि वाक्यों से श्रीरामायण का तात्पर्य भगवान् श्रीराम में सुस्पष्ट है। अब अभ्यास के द्वारा तात्पर्य का निरूपण किया जाएगा। अभ्यास का अर्थ है– ग्रन्थ के मध्य में बारम्बार जिसका वर्णन किया गया हो। अतः अब उपक्रम उपसंहार के पश्चात् अभ्यास द्वारा रामायण के तात्पर्य का विवेचन होगा।

महाभारतकर्ता श्रीव्यासजी ने यद्यपि महाभारत में श्रीकृष्ण चरित्र व भगवान् की लीलाओं का वर्णन किया है किन्तु अभ्यास द्वारा इसको पुष्टि नहीं है इसीलिये देवर्षि नारद ने वेदव्यासजी से कहा है कि आपने महाभारत में प्रवृत्ति मार्ग को प्रधान बनाकर निवृत्ति मार्ग को गौण कहा है अतएव आप अशान्त हैं। स्वाभाविक रागग्रस्त जीव को विषय भोगों में धर्म द्वारा प्रोत्साहन देना उचित नहीं–

है। धर्म का वास्तविक तात्पर्य निवृत्ति में ही है।[1] अब यहाँ ठीक से विचार किया जाय तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वेदव्यास जी से महाभारत में धर्म की व्याख्या में कुछ व्यतिक्रम हो गया है। प्रश्न यह आता है कि क्या महाभारत में निवृत्ति निष्ठा का वर्णन नहीं है ? क्या इसमें धर्म, अर्थ एवं काम का ही वर्णन है, भगवान् की महिमा का वर्णन नहीं है ? इसका स्पष्ट समाधान करते हुए देवर्षि ने कहा– मुने ! इसमें जैसी आपने धर्म, अर्थ और काम की महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है वैसी भगवान् की महिमा नहीं कही है।[2]

इसका तात्पर्य यही है कि महाभारत में 'अभ्यास' द्वारा भगवत् महिमा का वर्णन नहीं है। अभ्यास द्वारा प्रवृत्ति को ही दृढ़ किया गया है निवृत्ति को नहीं। उपक्रम उपसंहार में अवश्य भगवान् की महिमा एवं निवृत्ति निष्ठा का वर्णन है किन्तु 'अभ्यास' के द्वारा नहीं। ग्रन्थ का तात्पर्य मुख्य रूप से उपक्रम उपसंहार और 'अभ्यास' द्वारा ही व्यक्त होता है। तात्पर्य निर्णय में अभ्यास की विशेष आवश्यकता है। श्रीमद् रामायण में सर्वत्र अभ्यास के

---

1. जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
2. यथा धर्मादयश्चार्थाः मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
   न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥

द्वारा भी श्रीराम तत्त्व का ही दर्शन होता है।

अवतार प्रसंग में देवताओं की प्रार्थना से भगवान् विष्णु प्रकट होते हैं तथा देवताओं को निर्भय होने का आश्वासन देते हैं।[1] कुछ विद्वान् विष्णु का व्यापक अर्थ करते हैं तथा शंखचक्रगदापाणिः का अर्थ करते हैं–जिनके करतल में शंख चक्र गदा आदि की रेखायें हैं किन्तु यह अर्थ सही नहीं। इस श्लोक में शंख चक्र आदि आयुधों से युक्त ही श्रीविष्णु का प्रकट होना कहा गया है। इसी प्रसंग में विष्णु, नारायण, मधुसूदन आदि नामों से श्रीराम का अभेद कहा गया।[2] वस्तुतः श्रीराम से भिन्न मधुसूदन नारायण आदि नहीं हैं उपसंहार वाक्यों से यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है। त्रिदेवों की समता में विष्णु की गणना आती है अतः शिव ब्रह्मा आदि देवतागण विष्णु रूप से ही अधिक परिचित हैं।

इस प्रसंग में 'कृत्वात्मानं चतुर्विधम्' 'विष्णोरर्धं महाभागम्' आदि वाक्यों का अर्थ भी विलक्षण ही है। यहाँ पायस–खीर के आधे भाग को ही अर्ध कहा गया है

---

1. एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
   शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
2. 'त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो', 'विष्णो पुत्रत्वमागच्छ',
   देवानां विष्णुरात्मवान्', तुष्टुवुर्मधुसूदनम्, ततो नारायणो विष्णुः।

क्योंकि परमात्मा में आधा, चौथाई आदि का विभाग नहीं होता है। उस परमात्मा में से यदि पूरा पूरा भाग निकाल दिया जाय तब भी पूरा हो अवशिष्ट रह जाता है।[1] उपनिषद् में 'अर्ध का अर्थ' वर्धक भी है। 'कृत्वात्मानं चतुर्विधम्' इस श्लोक में आत्मा शब्द का अर्थ है शरीर, अर्थात् श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भ्रातागण भगवान के शरीर हैं। परधाम में भी इन भ्राताओं के साथ ही प्रभु सदा विराजमान रहते हैं अतः आत्मा कहना भी उपयुक्त ही हैं। आत्मा सबसे प्रिय है उसी प्रकार भ्रातागण भी प्रभु को आत्मा के समान प्रिय हैं।

लीला प्रकरण में भी श्रीलक्ष्मणजी को श्रीरामजी की दक्षिण भुजा एवं बाहरी प्राण कहा गया है,[2] अयोध्या में शीतकाल के समय श्रीभरतजी के शरीर में ठंढक लगती है और श्रीराम को गोदावरी तट पर ठंढक लगने लगती है अतः शरीर कहना ठीक ही है। सनत्कुमार

---

1. पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
2. रामस्य दक्षिणो बाहुः बहिः प्राण इवापरः।
3. प्र० – किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्?
   उ० – वैदेही सहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे।
   मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्॥
   अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं,
   व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्॥

संहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज में सर्वश्रेष्ठ ध्यान क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में भ्राताओं सहित श्रीसीतारामजी के ध्यान को ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।[1] 'सशरीरः सहानुजः' से अनुजों के साथ परधाम यात्रा कही गयी है।

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महर्षि विश्वामित्र ने श्रीदशरथ जी से कहा है कि मैं सत्य पराक्रम श्रीराम को जानता हूँ तथा वशिष्ठ जी एवं तपोनिष्ठ मुनिगण भी जानते हैं।[3] यहाँ 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इस श्रुति के अनुसार वेदज्ञ ऋषि मुनियों द्वारा जानने योग्य श्रीराम को कहा गया है। विश्वामित्र प्रसंग में ऐश्वर्य माधुर्य का पूर्ण विकास है। एक ओर तो महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को सर्वेश्वर जानते हैं तभी तो श्रीराम के द्वारा मारीच सुबाहु आदि असुरों का नाश कराना चाहते हैं किन्तु प्रभु के दर्शन के पश्चात् महर्षि का ऐश्वर्य ज्ञान लुप्त हो गया।

जब प्रभु विश्वामित्र जी के साथ चले तो प्रभु ने अपनी मनोहर बाललीला प्रकट की। कभी तालाब में कूद पड़ते हैं, कभी पहाड़ों पर चढ़कर वन की शोभा देखने लगते हैं तो कभी कभी वृक्षों पर चढ़ जाते हैं। प्रभु की इन मधुर लीलाओं को देखकर महर्षि प्रेम में निमग्न हो जाते हैं,

---

1. अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वशिष्ठोऽपि महातेजाः ये चेमे तपसि स्थिताः ॥

ऐश्वर्य को भूल जाते हैं और स्नेह में घबड़ाकर ऐसा करने से रोकते हैं- 'पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग मृग बन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई ॥"

रात्रि में सुन्दर कहानियाँ सुनाकर सुलाते हैं और प्रातः कौशल्या बनकर जगाते हैं।[1] महर्षि विश्वामित्र ने अयोध्या में कहा था कि मैंने राक्षसों को शाप देकर इस लिये नहीं मारा क्योंकि शाप देने से धर्म चला जाता है। वह यज्ञ ऐसा है कि उसमें शाप देना, क्रोध करना मना है— 'न शापस्तत्र मुच्यते' किन्तु जब वे श्रीराम प्रेम में विभोर हो गये तब क्रोध भी किया और ताड़का को मारने के लिये पूरा तपोबल भी लगा दिया। जब श्रीरामजी के ऊपर ताड़का लपकी तब महर्षि ने हुंकार से उसकी भर्त्सना की और श्रीराम लक्ष्मण की जय हो कल्याण हो ऐसा आशीर्वाद दिया।[2] ऐश्वर्य माधुर्य का इसी प्रकार का मधुर संगम रामायण में सर्वत्र मिलता है। पूर्व में परशु-राम पराजय प्रसंग में श्रीराम की भगवत्ता तो सुस्पष्ट हो

---

1. "कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ, रमयामास धर्मात्मा"..... 'कुशिकसुतवचोऽनुलालिताभ्यां क्षणमिव सा विबभौ विभावरी' कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वासन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥
2. विश्वामित्रस्तु ब्रह्मर्षिर्हुंकारेणाभिभर्त्स्यताम्। स्वस्ति राघवयोरस्तु जयञ्चैवाभ्यभाषत ॥

ही गयी थी। इस प्रकार अभ्यास द्वारा श्रीरामजी को परात्परता कही गयी।

बालकाण्ड में ताटकावध, अहल्योद्धार, शैवधनुर्भंग एवं परशुराम पराजय आदि प्रसंगों के द्वारा श्रीराघवेन्द्र का असाधारण परत्त्व कहा गया तथा श्रीजनकनन्दिनी की प्राप्ति से 'श्रीयोग' भी कहा गया है। 'रामस्तु सीतया सार्धं विजहार बहून् ऋतून्' इस श्लोक से बालकाण्ड के अन्त में श्रीसीतारामजी का अलौकिक चिन्मय विलास कहा गया है।

अब अयोध्याकाण्ड में श्रीरामजी का असाधारण सौलभ्य कह रहे हैं। वेदोक्त सामान्य, विशेष, विशेषतर एवं विशेषतम इन चार धर्मों का निरूपण इस काण्ड का मुख्य विषय है। पिता के आज्ञापालनरूप सामान्य धर्म की शिक्षा श्रीरघुनन्दन ने दी है। भगवत् शेषरूप विशेष धर्म की शिक्षा श्रीलक्ष्मणजी ने दी। भगवत्पारतन्त्र्य रूप विशेषतर धर्म की शिक्षा श्रीभरतजी ने तथा भागवत निष्ठा रूप विशेषतम धर्म की शिक्षा श्रीशत्रुघ्न कुमार ने दी है। पूर्वकाण्ड में श्रीसीता सहित श्रीराम प्राप्य हैं इस काण्ड में प्राप्त करने वाले जीव के स्वरूप का निरूपण किया है।

श्रीलक्ष्मणजी के चरित्र से भगवत् सेवा रस के महत्त्व एवं स्वरूप आदि का विवेचन किया जाएगा सर्वप्रथम

भागवतनिष्ठा का वर्णन करते हैं– जब श्रीभरतजी अपने ननिहाल जाने लगे तब नित्य शत्रुओं पर सदा विजय प्राप्त करने वाले. अनघ एवं प्रेमरस रसिक श्रीशत्रुघ्न जी को भी उन्होंने साथ ले लिया।[1] श्रीभरतजी के उद्देश्य के अतिरिक्त शत्रुघ्न कुमार का कोई और उद्देश्य नहीं है। इसीलिये 'मातुलकुलम्' में द्वितीया विभक्ति है जो श्रीभरत जो का ही उद्देश्य है, इसी में शत्रुघ्न जो का उद्देश्य निहित है।

'शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः' श्लोक में शत्रुघ्नजी के तीन विशेषण हैं– अनघ, नित्यशत्रुघ्न तथा प्रीति पुरस्कृत। हृदय में सदा विराजमान काम, क्रोधादि जीव के नित्य शत्रु हैं क्योंकि ये प्रभु के चरण कमलों को छोड़कर विषयान्तर की ओर जीव को प्रवृत्त करते रहते हैं। इन शत्रुओं का सदा के लिये शत्रुघ्न लाल ने नाश कर दिया है अर्थात् इन्द्रियों पर इनका पूर्ण अधिकार है। श्रीशत्रुघ्न कुमार का धर्म अत्यन्त ही विलक्षण है। श्रीभरतजी की सेवा को छोड़कर ये और कुछ भी नहीं जानते हैं यहाँ तक संयम है कि अनन्त सौन्दर्य माधुर्य सागर श्रीरघुनन्दन के मुखचन्द्र की ओर भी नहीं देखते हैं क्योंकि श्रीराघवेन्द्र का

---

1. गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः नीतः प्रीति पुरस्कृतः॥

असमोर्ध्व सौन्दर्य कठिन चित्त वाले पुरुषों के भी नयन मन को हर लेता है।[1] श्रीभरतजी की सेवा में विघ्न न पड़ जाय, प्रमाद न हो जाए इसीलिये श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्र की ओर नहीं देखते हैं।

'अनघ' शब्द से श्रीभरत सेवा विरोधी का संकेत है और यहाँ तक कि श्रीराम भक्ति का भी संकेत है। यहाँ अनिष्ट वस्तु को अघ कहा गया है। जिस प्रकार श्रुति में पुण्य को भी पाप शब्द से कहा गया है।[2] रावण वध के पश्चात् लवणासुर से त्रस्त ऋषिगण जब श्रीराम के दरबार में आये तब लवणासुर वध के लिये भगवान् श्रीराम ने शत्रुघ्न कुमार को आज्ञा दो। शत्रुघ्न कुमार ने असुर का वध किया मधुपुरी – मथुरा को बसाया अतः श्रीवसिष्ठ जी ने इनका शत्रुघ्न नाम सोच समझकर ही रखा था।

'प्रीति पुरस्कृतः' यह तृतीय विशेषण है अर्थात् प्रीति रस से प्रेरित होकर ही श्रीभरतजो के साथ शत्रुघ्नजी ननिहाल गये। लघुभ्राता को ज्येष्ठ भ्राता का अनुवर्तन करना चाहिये – इस प्रकार विधि परतन्त्र होकर नहीं गये किन्तु श्रीभरत पादारविन्द मकरंद रस से आकृष्ट चित्त

---

1. चन्द्रकान्तानन रामम्तीव प्रियदर्शनम्।
   रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम्॥
2. न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्ते।

होने के कारण ही गये ।

'नीत:'– शत्रुघ्न जी के लिये इस क्रिया का प्रयोग किया गया यह भी सकारण है । चेतन के लिये यह क्रिया उपयुक्त नहीं है, चेतन के लिये तो 'ययौ' क्रिया का प्रयोग उपयुक्त था किन्तु अचित् – जड़ वस्तु के समान परतन्त्र श्रीशत्रुघ्नजी के लिये नीत: क्रिया का ही प्रयोग किया गया अर्थात् 'भरतेन शत्रुघ्न: नीत:' – भरतजी ने शत्रुघ्नजी को ले लिया । जिस प्रकार बाहर जाते समय कोई अपनी जड़ वस्तु छड़ी छत्ता ले ले उसी प्रकार ननिहाल जाते समय श्रीभरतजी ने शत्रुघ्नजी को साथ ले लिया । श्रीगोविन्दराज लिखते हैं कि – 'यदि कोई अत्यन्त सारग्राही पुरुष हो तो श्रीशत्रुघ्नजी की तरह भागवत परतन्त्र होकर जीवन कृतार्थ करे' ।[1]

तात्पर्य यह है कि भागवत निष्ठा में शत्रुघ्न जी इतने तल्लीन हैं कि उनको भागवत शिरोमणि श्रीभरतजी की सेवा छोड़कर और कुछ नहीं दीखता है भगवान् की सेवा से भी बढ़कर भागवत की सेवा है यह सिद्धान्त सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवत सम्मत है– 'मद्भक्तेभ्योऽधिका पूजा' मुझसे भी अधिक मेरे भक्त की पूजा करनी चाहिये ।

---

1. यद्यत्यन्तसारग्राही पुरुष: स्यात्तदा शत्रुघ्नवद्
भागवत परतन्त्रतया वर्तितव्यमिति व्यञ्जितम्।

पद्मपुराण का यह वचन प्रसिद्ध है– सर्वश्रेष्ठ श्रीहरि का आराधन है किन्तु उससे भी श्रेष्ठ भगवद् भक्तों का आराधन है।[1] मानस में श्रीमुख का वचन है – मोते अधिक संत कर लेखा। श्रीकागजी भी कहते हैं– मोरे मन प्रभु अस विस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥ राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा॥

विनय पत्रिका में गोस्वामीजी ने सन्तों की कृपा से, बिना प्रयास भगवान् की प्राप्ति कही है— 'संसय समन दमन दुख, सुख निधान हरि एक। साधु कृपा बिनु मिलहिं नहि करिय उपाय अनेक॥ भवसागर कहँ नाव सन्तन के चरन। तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुख हरन॥ इस प्रकार श्रीशत्रुघ्नजी ने जो विशेष धर्म रूपी भागवत-निष्ठा प्रदर्शित की है वह जीवमात्र के लिये अनुकरणीय है।

भागवत निष्ठा का फल अनायास भगवत्प्राप्ति है। साधन काल में भी भगवद् भजन के बिना भगवत्स्वरूप की स्फूर्ति भागवतनिष्ठ को होती रहती है। इसीलिये श्रीभरतजी के पूछने पर श्रीशत्रुघ्न जी ने कहा कि 'मैं सो नहीं रहा हूँ, उन्हीं आर्य का चिन्तन करते हुए जाग रहा हूँ।[2] अर्थात् श्रीरघुनन्दन की मधुर स्मृति मुझे शयन

---

1. आराधनानां सर्वेषांविष्णोराराधनं परम्।
   तस्मात्परतरं देवि ! तदीयानां समर्चनम्॥
2. नाहं स्वपिमि जागर्मि तमेवार्यं विचिन्तयन्।

नहीं करने देती अतः मैं जाग रहा हूँ ।

राज्याभिषेक के प्रसंग में भी श्रीभरतजी ने रथ का संचालन किया तथा श्रीशत्रुघ्नजी ने प्रभु के शिर पर छत्र लगाया ।[1] श्रीभरतजी के प्राप्य और जीवनधन प्रभु सेवा तथा प्रभु प्रेम हैं उस सेवा में शत्रुघ्न जी का एकमात्र अधिकार है क्योंकि शेषी के उद्देश्य से पृथक् शेष का उद्देश्य नहीं होता है। इस प्रकार श्रीशत्रुघ्नकुमार द्वारा अनुष्ठित विशेषतम धर्म की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की गयी । अब श्रीलक्ष्मणकुमार के चरित्र द्वारा विशेष धर्म की व्याख्या की जा रही है ।

माता पिता एवं गुरुजनों की सेवा की अपेक्षा भगवान् की सेवा को सर्वश्रेष्ठ समझना विशेष धर्म का स्वरूप है । यदि भगवत्सेवा के साथ साथ माता पिता आदि की सेवा बन जाय तब सामान्य धर्म के साथ विशेष धर्म का अनुष्ठान किया जा सकता है किन्तु यदि भगवत्सेवा में तनिक भी बाधा उत्पन्न हो तो सामान्य धर्म का परित्याग शास्त्र विहित है । इसी दृष्टि से गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में कहा है— 'जाके प्रिय न राम बैदेही ।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बन्धु भरत महतारी ।

---

1. जग्राह भरतो रश्मीन् शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।

गुरु बलि तज्यो कन्त ब्रज बनितनि भये मुदमंगलकारी ॥

इस पद में जितने भी नाम आये हैं सभी विशेष धर्म के अधिकारी हैं। इन महापुरुषों ने अपने अपने बन्धुजनों का परित्याग किया है इसका परिणाम मंगलमय हुआ। तात्पर्य यह है कि जितने भो बन्धु बान्धव के रूप में उपकार करने वाले सज्जन हैं वे प्रभु की प्रेरणा से ही उपकार करते हैं प्रेम करते हैं। भगवान् के शरोर के रूप में बिखरे हुए अनन्त जीवों की आत्मा तो भगवान् ही हैं अतः शरोर के द्वारा किया हुआ उपकार अन्त में आत्मा के शरीर का ही उपकार है।

वाल्मीकोय रामायण में जगत् को श्रीराघवेन्द्र का शरीर कहा गया है – 'जगत्सर्वं शरीरं ते' श्रुति में भी आत्मा को प्रभु का शरोर कहा गया है– 'यस्य आत्मा शरीरम्'। भागवतकार ने भी प्रभु के शरीर के रूप में हो जल, अग्नि, सरिता, समुद्र आदि को स्वोकार किया है।[1] जब तक मनुष्य के हृदय में यह विवेक उदय नहीं हुआ है कि चराचर प्राणी भगवान् के हो शरीर हैं तभी तक माता पिता आदि के उपकारों को पृथक् पृथक् समझता है।

मातृ ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण आदि की व्यवस्था

---

1. खं वायुमग्निं सलिलं महींश्च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

सामान्य धर्म के मुख्य अधिकारियों को दृष्टि से ही की गई है। भागवत में सुस्पष्ट है – जो मनुष्य सर्वतोभावेन भगवान् की शरण में चला जाता है वह देवता पितर ऋषि आदि का ऋणी नहीं होता है।[1] यदि ऐसे अनन्य शरण साधक द्वारा प्रमाद से कभी कोई प्रतिकूल आचरण हो जाता है तब साधक के हृदय में विराजमान भगवान् सभी पापों को नष्ट कर देते हैं। अतः साधक को भगवद् भजन को छोड़ कर अन्य प्रायश्चित्त करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है।[2]

भागवत में इस विशेष धर्म का निरूपण स्थल स्थल पर किया गया है। भगवान् की वंशी ध्वनि को सुनकर जब गोपियाँ उनके पास आयीं तब रसिक शिरोमणि ने वचन जालों से विमोहित करते हुए उनसे कहा कि आप सब घर लौटकर पति पुत्र आदि की सेवा करें। आपका धर्म पति पुत्र की सेवा ही है— 'शुश्रूषध्वं पतीन् सतीन्'। गोपियों ने कहा– आपने पति पुत्र आदि की सेवा करने की आज्ञा दी है और इसी को हमारा धर्म भी बतलाया है

---

1. देवर्षि भूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
   सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥
2. स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
   विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥

किन्तु धर्माचार्य श्यामसुन्दर ! आप ही बतलाइये कि पति पुत्र आदि की सेवा का फल क्या है ? [1] भगवान् ने कहा– यज्ञ, दान, तप आदि सभी साधनों का फल भगवत्प्राप्ति ही है। श्रुति कहती है – तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणाः विविदिषन्ति' ,

गोपियों ने कहा – जब दान, यज्ञ, तप आदि का फल भगवत्प्राप्ति ही है तब तो हमको इन साधनों के फलस्वरूप आप मिल ही गये हैं फिर पति पुत्र आदि को सेवा रूप साधनों की क्या आवश्यकता है ? फल का रस मिल जाने पर वृक्ष लगाने की क्या आवश्यकता है। प्राणी मात्र के सच्चे बन्धु एवं आत्मा आप ही हैं। विशेष धर्म का अर्थ हैं जीव का अपना सच्चा धर्म, आत्मा का वास्तविक धर्म।

इसीलिये वन जाते समय श्रीरामजी को देख कर श्रीलक्ष्मणकुमार अधीर हो गये। [2] और सोचने लगे कि जब अपनी अर्धांगिनी अभिन्न स्वरूपा श्रीजानकी जी को ही साथ लेने में इतनी कठिनाई हुई इतना शास्त्रार्थ करना पड़ा फिर मुझको प्रभु कैसे साथ लेंगें ? अतः अत्यन्त यशस्वी श्रीलक्ष्मणकुमार ने उपायान्तर शून्य होकर (अन्य

1. यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥
2. एवं श्रुत्वा तु संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
वाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥

साधनों से मन को हटाकर) श्रीरघुनन्दन के चरणों को जोर से पकड़कर श्रीसीताजी से स्वयं को भी वन ले चलने के लिये कहा ।[1] इस श्लोक में श्रीलक्ष्मणकुमार की निष्ठा का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है । यहाँ लक्ष्मणकुमार का विशेषण है 'अतियशा' । भगवत् शरणागत को सर्वत्र 'श्रीमान्' कहा गया है । पूर्व में भी 'लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः' कहा गया तथा गजेन्द्र के लिये भी 'श्रीमान्' शब्द का प्रयोग हुआ है 'स तु नागवरः श्रीमान्' ।

सचमुच जब जीव भगवान् की शरण में आ जाता है तभी समस्त ऐश्वर्य का अधिकारी हो जाता है । भगवत् शरणागत तो भगवत् सम्पत्ति का भी अधिकारी हो जाता है अतः शरणागत के लिये श्रीमान् विशेषण उचित ही है । भगवान् के चरणों से दूर रहने वाला सर्वसाधन सम्पन्न व्यक्ति भी श्रीहीन-यशोहीन ही रहता है । अतः यश, श्री, सुख ऐश्वर्य चाहने वाले मनुष्य को श्रीलक्ष्मणकुमार के समान श्रीरामशरण में आना चाहिये ।

सुमित्रानन्दन ने एकमात्र अपने स्वामी प्रभु श्रीराम से कहा – नाथ ! यदि आपने सचमुच वन में जाने का निश्चय किया है तो मैं धनुष बाण लेकर आपके आगे आगे चलूँगा ।[2]

---

1. स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
   सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम् ॥
2. यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
   अहं त्वाऽनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥

यदि का अर्थ है कि आप वन में नहीं जाँय यहीं निवास करें। यदि आप अवश्य जाना ही चाहते हों तब मैं सेवा में अवश्य साथ जाऊंगा। धनुष बाण से लक्ष्मणकुमार अपनी सेवा का संकेत कर रहें हैं। प्रभो ! वन में बड़े बड़े दुष्ट हिंस्र जन्तु रहते हैं अतः उनसे रक्षा करने के लिए कभी कभी आपके आगे भी और कभी पीछे चलूंगा। सेवक को स्वामी के पीछे रहना चाहिए किन्तु यह नियम साधारण सेवक के लिये है 'स्नेहमूर्ति श्रीलक्ष्मणजी तो सामान्य नियमों को भुलाकर कैंकर्य करते हैं क्योंकि वे विशेष धर्म के पालक हैं इसीलिये 'अग्रे धनुर्धरः' कहा है।

बालकाण्ड में भी कहा है कि जब श्रीरघुनन्दन मृगया को जाते हैं तब श्रीलक्ष्मण कुमार भी अश्व पर चढ़कर प्रभु की रक्षा करते हुए पीछे पीछे चलते हैं।[1] यहाँ भी धनुषबाण लेकर श्रीरामजी की रक्षा करना इनके प्रेम की सीमा का ही परिचायक है। लक्ष्मणकुमार के एकमात्र रक्षक श्रीरामजी हैं किन्तु स्नेहातिशय के कारण कभी कभी स्वयं रक्षक बन जाते हैं। अतः 'सधनुः परिपालयन्' अग्रे-धनुर्धरः, आदि विशेषण विशिष्ट कैंकर्य के बोधक हैं। आगे लक्ष्मणकुमार कहते हैं इस प्रकार मेरे साथ वन में आप

---

1. यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः।
तदैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ॥

आनन्द पूर्वक विहार करेंगे ।[1]

अनन्य सेवक प्रभु को सेवा को छोड़कर और कुछ नहीं चाहता है और की तो बात ही क्या है मोक्ष को भी तिलाञ्जलि दे देता है । अतएव सुमित्रानन्दन का कथन है मुझे आपके बिना न किसी लोक का ऐश्वर्य चाहिये न इन्द्र पद चाहिये और न ही परमपद चाहिये ।[2] यहाँ 'देवलोक' से 'देवानां पूरयोध्या' की ओर संकेत है इससे परमपद का त्याग सूचित है । "अमरत्वम्'से कैवल्य मुक्ति का परित्याग सूचित है । 'ऐश्वर्यम्' से ब्रह्मलोक पर्यन्त ऐश्वर्य का त्याग है । 'कामये न त्वया विना' इससे अन्य प्रयोजन शून्य शरणागति का वर्णन है ।

पूर्वाचार्यों ने अकारत्रय सम्पन्न प्रपन्न की भूरि भूरि प्रशंसा की है । अनन्यशरण्य, अनन्योपाय तथा अनन्य प्रयोजन ये तीन विशेषण शरणागत के असाधारण हैं । इन तीनों गुणों से युक्त सदा एकरस तोरा जमहिषो परम प्रेयसी श्रीसीताजी ही हैं किन्तु श्रीलक्ष्मण कुमार प्रभृति महापुरूषों में भी ये विशेषण सदा विद्यमान रहते हैं । स्वामी श्री यामुनाचार्यजी महाराज कहते हैं– हे

---

1. मया समेतोऽरण्यानि बहूनि विचरिष्यति।
2. न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
   ऐश्वर्यं वापि लोकानां कामये न त्वया विना ।।

नाथ ! एक बार आपके दर्शन को लालसा में जो महापुरुष गण उत्तम से उत्तम भोग एवं मोक्ष को तिलाञ्जलि दे देते हैं। तृण के समान तुच्छ जानकर त्याग देते हैं ऐसे महात्माओं का दर्शन हमें करा दीजिये, उनका कटाक्षभाजन हमें बना दीजिये।[1] कितनी सुन्दर इस श्लोक की पंक्ति है – 'क्षणेऽपि ते यद् विरहोऽति दुस्सहः' एक क्षण के लिये भी जिनका वियोग आपको असह्य है तथा जिन भक्तों को आपका वियोग असह्य है – आपके बिना जो महापुरुष जीवित नही रह सकते हैं तथा जिनके बिना आप भी उदास रहते हैं ऐसे महापुरुषों का समागम हमको प्राप्त हो।

इस श्लोक में वर्णित भाव का पूर्ण विकास श्रीलक्ष्मण-कुमार में ही है। श्रीरघुनन्दन भी सुमित्राकुमार के बिना भोजन शयन आदि क्रिया कलाप नहीं करते हैं।[2] यह तो प्रभु की ओर से श्रीलक्ष्मणकुमार के प्रति अगाध प्रेम का परिचायक प्रमाण हुआ कि श्रीलक्ष्मणकुमार के बिना श्रीराम जी को एक क्षण व्यतीत करना भी असह्य है। इसी प्रकार लखनलालजी भी जल से निकाली हुई मछली की भाँति प्रभु के विना जीवित नहीं रह सकते। जब श्रीरामजी ने

---

1. सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः।
   महात्मभिर्मामबलोक्यतां नय क्षणेऽपि ते यद् विरहोऽतिदुस्सहः।
2. न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।
   मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति नहि तं विना॥

बारम्बार लक्ष्मणकुमार को अयोध्या लौटने का आग्रह किया तब वे बोले – राघव ! जिस प्रकार श्रीजनक नन्दिनी आपके विना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हैं उसी प्रकार मैं भी आपके बिना जीवित नहीं रह सकता। जल से निकली हुई मछली भले ही क्षण भर के लिये जल के बिना जीवित रह जाय किन्तु मैं तो आपके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।[1]

इस प्रतिज्ञा का निर्वाह अन्त तक किया गया है। उत्तर चरित्र में तो असाधारण अनन्यता कही गयी। 'कामये न त्वया विना' इस श्लोक का भाव विशेष धर्मानुरूप ही है। आगे अपने स्वरूपानुरूप कैंकर्य की प्रार्थना करते हैं – प्रभो ! मैं आपका एकमात्र शेष हूँ। शेष-सेवक के अनुरूप हमको सेवा मिलनी चाहिए।[2] सेवक का सेवा ही धन है अतः शरणागति के पश्चात् इस अनुपम धन की प्राप्ति उचित ही है। जब शरणागत प्रभु की शरण में जाता है तब वह महान् बन जाता है – अतएव श्रुति कहती है– 'ब्रह्मलोके महीयते'। कैंकर्यराज्यलक्ष्मी को प्राप्ति ही

---

1. न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
   मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ।।
2. कुरूष्व मामनुचरं वैवम्र्यं नेह विद्यते।
   कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः कल्पते ।।
   'मां शेषभूतं – अनुचरं, शेषत्वानुगुणं कैंकर्ययुक्तं कुरूष्व '।

परमानन्द की प्राप्ति है। अनादिकाल से सेवा विमुख जीव को सेवा की प्राप्ति ही वास्तविक नित्य सुख की प्राप्ति है। कैंकर्य रूपी अनन्त साम्राज्य सिंहासन पर अभिषेक होना ही जीवात्मा का वास्तविक साम्राज्य है।

श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी ने लिखा है -- परम प्रकाशमय कौस्तुभमणि के समान ही जीवात्मा भगवान् का प्रिय है। मायावश एवं कुमति के कारण ही अपने कैंकर्य राज्य-सिंहासन को छोड़कर अनेक योनियों में भटक रहा है।[1] इसी प्रकार श्री यमुनाचार्य जी ने आलवन्दार में भगवत्सेवा की ही याचना की है -- हे नाथ ! ऐसा मंगलमय समय कब आयेगा जब मैं सभी व्यर्थ मनोरथों को छोड़कर केवल आपकी ही सेवा करूंगा। आपका नित्य कैंकर्य जब मुझे प्राप्त होगा तभी मेरा जीवन कृतार्थ होगा।[2] अतएव अनन्त चेतनों के परमाचार्य श्रीलक्ष्मण कुमार श्रीरघुनन्दन से कैंकर्य की प्रार्थना कर रहे हैं।

प्रभो ! मुझको अपना अनुचर बनाइये, सेवक बना लीजिये। यदि आप कहें कि तुम मेरे भ्राता हो अतः तुमको

---

1. मणिवर इव शौरेर्नित्य हृद्योऽपि जीवः।
   कलुषमतिरविन्दन् किंकरत्वाधिराज्यम्॥
2. भवन्तमेवानुचरन्निरन्तर प्रशान्त निश्शेष मनोरथान्तरः।
   कदाहमैकान्तिक नित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥

सेवक बनाने में धर्म विरोध होगा तो इसका उत्तर देते हैं- इसमें धर्म विरोध का सन्देहलेश भी नहीं है क्योंकि आप केवल मेरे भ्राता ही नही हैं अपितु नित्य निरुपाधिक स्वामी भी हैं। अतः स्वामी की सेवा सेवक का परम धर्म है। आप मेरे निरुपाधिक स्वामी हैं और मैं आपका स्वाभाविक शेष-सेवक हूँ। साथ ही ज्येष्ठ भ्राता पिता के समान होता है अतः दोनों ही दृष्टियों से आपकी सेवा करना मेरा परम धर्म है। इस प्रकार मैं तो कृतार्थ हो ही जाऊंगा और आपका भी प्रयोजन सिद्ध होगा।

साधारण दृष्टि से प्रयास के बिना कन्द मूल फल आदि की प्राप्ति आपको मेरे द्वारा होगी यह अर्थ है किन्तु विशेष अर्थ तो यह है कि परम प्रिय चेतन की प्राप्ति करना भगवान् का भी प्रयोजन है। चेतनों पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् सदा सावधान रहते हैं। तभी तो आर्त जिज्ञासु एवं अर्थार्थी भक्त को भी भगवान् उदार एवं सुकृति कहते हैं।[1] और आश्चर्य है कि यहाँ सभी को उदार कहा गया है। ज्ञानी को उदार कहा जाता तो कुछ ठीक था किन्तु आर्त, जिज्ञासु एवं अर्थार्थी उदार कैसे

---

1. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

हो सकते हैं ? इसका तात्पर्य यही है कि भगवान् के द्वारा अपनी कामना पूर्ण करना चाहते हैं अतः ये भक्तगण भी पुण्यात्मा तथा उदार हैं।

वस्तुतः भगवान् से कुछ मांगने वाला उदार कहलाता है क्योंकि अर्थ, धर्म काम, मोक्ष इन चार पदार्थों को प्रदान करने के लिये प्रभु सदा तत्पर रहते हैं किन्तु प्रभु को छोड़ कर अज्ञानी जीव इन पदार्थों की प्राप्ति के लिये अन्य देवताओं की शरण में जाता है। अतः ऐसे जीवों की सर्वत्र निन्दा की जाती हैं। विवेकी इन वस्तुओं को भगवान् से ही चाहता है अतः उदार है। इसी दृष्टि से लखनलाल जी कहते है 'तव चार्थः प्रकल्पते' आपका प्रयोजन भी सिद्ध होगा।

मूल रामायण में स्पष्ट है कि विभीषण का अभिषेक करने के पश्चात् ही श्रीरघुनन्दन कृतकृत्य हुए। अर्थात् लंका में राक्षसेन्द्र विभीषण के अभिषेक के पश्चात् श्रीराम जी का सन्ताप दूर हो गया तथा प्रभु कृतकृत्य हो गये और परम प्रसन्न हुए।[1] रावण वध होने पर भी प्रभु का सन्ताप नहीं गया, जनकनन्दिनी श्रीजानकी जी की प्राप्ति होने पर भी प्रभु कृतकृत्य नहीं हुए किन्तु विभीषण को लंका पर अभिषिक्त करते ही सन्तापरहित व कृतकृत्य हो

---

1. अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह॥

गये यह श्रीराघवेन्द्र को भक्तवत्सलता है । आश्रित कल्पतरू श्रीराम को सेवक का लाभ ही परम लाभ है, आश्रितों की प्राप्ति ही परम प्रयोजन है । जिस प्रकार पुष्पमाला वस्त्र भूषण आदि के धारण करने से व्यक्ति की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार शेषभूत जीवों की प्राप्ति से शेषी भगवान् की शोभा बढ़ती है ।

अपने शेषभूत जीवों की प्राप्ति ही भगवान् का परम प्रयोजन है अतएव कहते हैं - 'तव चार्थः प्रकल्पते' । इस प्रकार कैंकर्य ही परम लाभ है यह कहा गया । अब श्री जानकीजी सहित श्रीराम युगल की सेवा ही वास्तव में रसनीय है इस विषय पर प्रकाश डालते हैं । श्रीलक्ष्मण कुमार कहते हैं– आप श्रीमिथिलेशराज किशोरीजी के साथ पर्वत कन्दराओं में विहार करेंगें और मैं आपके जागने तथा सोने पर समस्त सेवायें करूंगा ।[1]

सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के कैंकर्य करना ही शेष-सेवक का परम धर्म है साथ ही वैदेही सहित श्रीराम उपास्य हैं सेव्य हैं यह भी सिद्ध हुआ । श्रीलक्ष्मणकुमार का वनगमन का मनोरथ सिद्ध हुआ । तत्पश्चात् चित्रकूट में रमणीय कुटियों का निर्माण कर श्रीसीताराम सहित

---

1. भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥

लक्ष्मणकुमार तीनों रमण करने लगे – 'रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः'। श्रीलक्ष्मणकुमार का रमण युगल सेवा में ही है।

इस प्रकार विशेष धर्म का अभिनय करते हुए श्री लक्ष्मणकुमार ने चेतनों को श्रीराम शरणागति का ठीक ठीक उपदेश दिया है। रामायण में विस्तार से इनका चरित्र है। यहाँ तो 'अभ्यास के द्वारा श्रीराम ही परतत्त्व' प्राप्य हैं इसका विवेचन करना है।

भक्त शिरोमणि श्रीभरतजी ने विशेषतर धर्म का अनुष्ठान किया है। इस धर्म में श्रीसीतारामजी की परतंत्रता स्वीकार की गयी है। प्रभु की आज्ञा का पालन करना तथा उनके नाम गुणों का स्मरण करते हुए जीवन यापन करना शरणागत का परम धर्म होता है। जब श्री भरतजी को महर्षि वशिष्ठ ने राज्यासीन होकर प्रजापालन के लिए आदेश दिया तथा उनका 'यही धर्म है' ऐसा संकेत किया तब सभा के मध्य में वे गुरुदेव की निन्दा करते हुए विलाप करने लगे।[1] सभा के मध्य में श्रीवशिष्ठ जी की निन्दा का तात्पर्य यही है कि पुरोहित होकर गुरुदेव ने रघुकुल का सम्यक् हित नहीं सोचा। 'सभामध्ये' का अर्थ है कि सभा में बहुत लोग बैठे हैं उनमें से केवल मेरी

1. विललाप सभा मध्ये जगर्ह च पुरोहितम्।

परतन्त्रता का अपहरण किया।

एकान्त जंगल आदि में चोर डाकू लोग किसी के धन का अपहरण करते हैं किन्तु गुरूदेव ने सभा के मध्य में ही मेरे भगवत्कैंकर्य रूपी धन का अपहरण किया है। मैंने विधिपूर्वक वेदों का स्वाध्याय किया है ऐसी दशा में मैं प्रभु के राज्य का अपहरण करूँ यह कैसे सम्भव हो सकता है? भरत जी कहते हैं – यह समस्त राज्य ही नहीं किन्तु मैं भी श्रीराघवेन्द्र का सेवक हूँ। अतः गुरुदेव आप मेरे धर्म के अनुरूप ही उपदेश करें। राज्य तथा मैं दोनों श्रीराघवेन्द्र के शेष हैं, एक शेष दूसरे शेष की रक्षा कैसे कर सकता है? राज्य की रक्षा के लिये तो श्रीराघवेन्द्र को लौटाने का प्रयत्न करना चाहिये।[1]

गोस्वामीजो ने भी उपर्युक्त वचनों का समर्थन किया है– गुर विवेक सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व कर बदर समाना।। मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भए बिधि बिमुख विमुख सब कोऊ।। इसी का समर्थन श्रीभरद्वाज जी ने भी किया है – 'गुर अवमान दोष नहिं दूषा।। श्रीभरत जी के धर्मानुमोदित वचन सुनकर समस्त सभासद प्रेम में विह्वल होकर अश्रुधारा बहाने लगे। प्रातःकाल श्रीभरतजी समस्त पुरवासियों को लेकर श्रीराघवेन्द्र के दर्शन की

---

1. राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि।

कामना से रथपर बैठकर वन की ओर चल दिये। मार्ग में श्रीराघवेन्द्र के गुणों का स्मरण करते हुए सभी लोग चल रहे थे। वे कहते थे हमलोग मेघ के समान श्याम, महाबाहु, दृढ़व्रत, स्थिरचित्त, जगत् के शोक को नाश करने वाले श्रीरामजी को कब देखेंगे ? [1]

श्रीगोविन्दराज कहते हैं कि गीता में 'मा शुचः' इस श्लोक से भगवान् ने अर्जुन को जो शोक निवृत्त किया है उससे भी इस श्लोक का अधिक महत्व है [2] क्योंकि गीता में उपदेश के द्वारा शोक निवृत्त कही गई है और रामायण में केवल दर्शन मात्र से शोक निवृत्त होना कहा गया है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस वचन से रामायण के 'दृष्ट एव हि' श्लोक का महत्त्वाधिक्य है। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही सम्पूर्ण लोकों के अन्ध कार मिट जाते हैं उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्र के दूर से दर्शन करते ही हमारे शोक नष्ट हो जाएंगें। [3]

इस प्रकार श्रीसीतारामजी के दर्शन की लालसा से उनकी मंगलमयी कथा करते हुए सभी लोग श्रीभरतजी

---

1. मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढ़व्रतम्।
   कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम्॥
2. सर्वधर्मान् परित्यज्य–इत्युक्तवतोऽप्यास्यातिशय उक्तः।
3. दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः।
   तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः॥

के साथ वन की ओर जा रहे हैं। शृंगवेरपुर पहुँच कर भरतजी ने जब प्रभु का शयन स्थल देखा तो वे अत्यन्त विह्वल हो गये। श्रीजनकराजकिशोरीजीने आभूषण सहित तृण पर शयन किया था अतः कुछ स्वर्ण बिन्दु बिखरे हुए थे तथा साड़ी के छोर के उलझने से कुछ रेशमी धागे भी दिखाई दे रहे थे।[1] जिनका दर्शन कर श्रीभरतजी स्वयं को धिक्कारने लगे। महर्षि श्रीभरद्वाज के आश्रम में जब श्रीभरतजी पधारे तो उन्होंने देवदुर्लभ भोगों से उनका आतिथ्य किया किन्तु भरतजी ने आसन का पूजन किया तथा श्रीरामजी को समर्पित कर चँवर लेकर सचिव के आसन पर रात भर बैठकर अद्भुत वैराग्य एवं स्वामि-भक्ति का परिचय दिया।

यहाँ श्रीभरतजी ने शरणागत की एकनिष्ठता का तथा अलौकिक चर्या का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया है साथ ही मानस पूजा का भी आदर्श उपस्थित किया है। मानस में भी स्पष्ट है–'संपति चकई भरत चक मुनि आयस खेलवार। तेहि निसि आश्रम पिंजरा राखे भा भिनुसार॥ चित्रकूट पहुँचने पर श्रीरघुनाथजी का दर्शन भरतजी कृत-

---

1. मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिन् शयने शुभा।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकविन्दवः॥
उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा।
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः॥

कृत्य हो गये। प्रभु ने कुशल पूछा तथा समस्त धर्म एवं राजनीति की शिक्षा भरतजी को दी।

राजा को सन्मित्रों का संग्रह करना चाहिये तथा दुष्ट संग से दूर रहना चाहिये। प्रभु ने कहा कि भरतजी! तुम कहीं नास्तिक ब्राह्मणों को तो अपने पास नहीं रखते? क्योंकि ये लोग अपने को बड़ा पण्डित समझते हैं किन्तु वास्तव में शास्त्र के तात्पर्य को भलीभाँति न जानने के कारण ये सर्वथा यथार्थज्ञान से शून्य हैं। ऐसे व्यर्थ पाण्डित्याभिमानी लोगों को यथार्थज्ञान हो ही नहीं सकता। लोगों का धर्मानुष्ठान से चित्त हटाकर ये लोग उन्हें नरक भेजने में बड़े कुशल होते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में ही जिनका विश्वास है उनको लोकायतिक- नास्तिक कहते हैं।

श्रीराम वेद शास्त्रों के यथार्थ ज्ञाता हैं उन्हें 'सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञः समृतिवान् प्रतिभानवान्, कहा गया है। 'सर्वे वेदविदः शूराः' सभी भ्राता वेदवेत्ता तथा शूरवीर कहे गये हैं। प्रभु श्रीभरतजी को वेदशास्त्रों का वास्तविक तात्पर्य बतला रहे हैं कि वस्तुतः ईश्वर तथा धर्म में एकमात्र वेद ही प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणमें अनेक दोषहैं तथा अनुमान भी प्रत्यक्ष के आधार पर ही किया जाता है। अतः 'शास्त्र योनित्वात्' इस वेदान्तसूत्र से वेदव्यासजी ने वेद को ही एकमात्र प्रमाण स्वीकार किया है। गीता में भी भगवान् ने 'तस्मा-

च्छास्त्रं प्रमाणम्' कहकर शास्त्र प्रमाण को पुष्ट किया है।

गोस्वामीजी ने भी 'वेदान्तवेद्यं विभुम्' कहकर श्री राघवेन्द्र को वेदशास्त्रों से जानने योग्य कहा है। इस प्रसंग में श्रीरघुनाथजी ने कई सर्गों में जिस धर्म, नीति आदि का विशद विवेचन किया है वह मननीय है। गीता के अठारह अध्यायों में तत्त्व का उपदेश कर भगवान् ने अर्जुन को शोकमुक्त किया किन्तु श्रीरामायण में केवल अठारह श्लोकों में तत्त्वज्ञान का उपदेश कर श्रीराघवेन्द्र ने श्री भरतजी को शोक रहित कर दिया।[1]

श्रीभरतजी ने प्रभु से कहा—प्रभो! नश्वर पदार्थों के लिये हम शोक नहीं करते हैं। हम तो आपके वनवास एवं आपके वियोग दुख से पीड़ित हैं। मानस में भी श्रीभरत जी ने यही कहा है—मोहि न मातु करतब कर सोचू··· ··· राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥ अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात॥ बसि तरुतर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥ एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥ श्रीराघवेन्द्र ने भरतजी से कहा कि पिता जी के वचन को सत्य करने के लिये हम चौदह वर्ष वन में निवास करेंगें। तुम शत्रुघ्नजी सहित ब्राह्मणों एवं समस्त

---

1. नात्मनः कामकारो हि····· पिता नः पृथिवीपतिः॥

प्रजाओं को लेकर अयोध्या जाकर प्रजा का पालन करो।

अन्त में जब महर्षि जाबालि ने प्रभु को श्रीअवध लौटने के लिये नास्तिक मत का आश्रय लिया तब श्रीराघवेन्द्र ने उनको सटीक उत्तर दिया तथा एक बार पुनः वेद शास्त्र को प्रमाणित कर उनको निरुत्तर कर दिया। प्रभु ने कहा आप जैसे नास्तिक को प्रभु ने मन्त्रिमण्डल में कैसे रख लिया ? तब महर्षि जाबालि ने अपने स्नेहाधिक्य को ही इसमें कारण बताया। श्रीवशिष्ठजी ने श्री महर्षि जाबालि को आस्तिक सिद्ध किया है। श्रीराघवेन्द्र ने राज्य की सुव्यवस्था के लिये अपने प्रतिनिधि के रूप में अपनी पादुकायें देकर श्रीभरतजी को लौटा दिया।[1]

श्रीभरतजी ने प्रभु से कहा – आर्य! इन सुवर्ण भूषित पादुकाओं पर अपने चरण कमल रख दें क्योंकि ये पादुकायें सभी के योगक्षेम का निर्वाह करेंगीं। प्रभु ने चरणपादुका धारण कर पुनः उतार कर भरतजी को दे दीं। श्रीभरत जी ने पादुकाओं को ग्रहण कर प्रभु से कहा रघुनन्दन ! आज से लेकर चौदह वर्षों तक जटा चीर धारण कर तथा कन्द मूल फल खाकर मैं अयोध्या नगर से बाहर रहूँगा। जिस दिन चौदह वर्ष पूरे हो जाएंगें उस दिन आपको अयोध्या में नहीं देखूंगा तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।

---

1. पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्वा पुनः पुनः..... .....

इस प्रकार अयोध्या लौटकर श्रीभरतजी ने चौदह वर्षों तक नन्दिग्राम में मुनिवेष धारण कर निवास किया। वे चरणपादुका की आज्ञा से राज्य शासन करते थे तथा साथ ही कोई बहुमूल्य भेंट आती तो पहले चरण पादुका के समक्ष समर्पण कर पश्चात् व्यवहार में लायी जाती थी। श्रीभरतजी असाधारण वैराग्य धारण कर नन्दिग्राम में प्रभु आगमन की प्रतीक्षा करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करने लगे। गोस्वामीजी ने इनके नियम तथा प्रभु प्रेम की भूरि भूरि प्रशंसा की है – 'अवध राज सुर राजु सिहाई..... लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥ दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

एतावता विशेषतर धर्म के आदर्श श्रीभरतजी ने जिस अलौकिक शरणागत निष्ठा का निर्वाह किया है वह सभी के लिये अनुकरणीय है। प्रभु समीप रखें अथवा दूर रखें शरणागत को उनकी आज्ञा का पालन करते हुए भगवत्स्मरण द्वारा जीवन का निर्वाह करना चाहिये यही इस निष्ठा का परम आदर्श है।

चित्रकूट के पश्चात् भगवान् श्रीराम दण्डकारण्य पधारे। दिव्यज्ञान से युक्त महर्षियों ने उनकी शरणगति की। रावण आदि राक्षसों का वध करने के लिये प्रभु का

अवतार हुआ है महर्षिगण इस रहस्य को जान गये। प्रभु के श्रीविग्रह का संगठन उनकी शोभा, सुकुमारता एवं लावण्य को देख कर वनवासी ऋषिगण विस्मित हो गये। पद्मपुराण में कहा गया है कि दण्डकारण्य निवासी महर्षियों ने उनके सौन्दर्य माधुर्य से आकृष्ट होकर उनका आलिगन करना चाहा किन्तु इस अवतार में तो श्रीमैथिली को छोड़कर मधुर भावान्तर्गत अन्य कोई आलिगन प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः वे ही ऋषिगण गोकुल में गोपी रूप में प्रकट हुये तथा काम भाव से भगवान् को प्राप्त कर संसार से मुक्त हो गये। प्रभु के सौन्दर्य माधुर्य को देख कर ऋषिगण उनको आशीर्वाद देने लगे। बाद में महर्षियों ने कहा – 'प्रभो ! हम आपके देश के निवासी हैं अतः हमारी रक्षा करें।' मुनियों की प्रार्थना सुन कर भगवान् ने राक्षस वध की प्रतिज्ञा की। विराध राक्षस का वध कर शरभंग जी के आश्रम पर पधारे। मुनि ने प्रभु का सत्कार किया पुनः सुतीक्ष्ण जी के आश्रम में प्रभु पधारे।

जब श्रीकिशोरीजी ने प्रभु से प्रार्थना की कि 'केवल अपराधी राक्षसों का ही आप वध करें, निरपराध राक्षसों का वध करना उचित नहीं है।' [श्री जनकनन्दिनी के साथ प्रभु का यह संवाद रामायण में विशद रूप से वर्णित है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण एक मीमांसा ग्रन्थ में इस

प्रसंग की विशद व्याख्या की गयी है जो वहीं ध्यान से पढ़ने योग्य है ।] प्रभु ने श्रीजानकीजी से कहा कि मैं अपने प्राणों का परित्याग कर सकता हूँ तथा श्रीलक्ष्मणकुमार सहित आपका भी परित्याग कर सकता हूँ किन्तु विशेषकर महर्षियों के समक्ष राक्षस वध के लिये की गयी अपनी प्रतिज्ञा का परित्याग नहीं कर सकता ।[1] प्रभु की शरणागत वत्सलता को देख कर श्रीजानकी जी अत्यन्त प्रसन्न हुयीं । इसके पश्चात् कहीं तेरह मास, कहीं एक वर्ष, कहीं चार मास इस विधि से निवास करते हुये प्रभु के दस वर्ष व्यतीत हो गये । तत्पश्चात् प्रभु अगस्त्य जी के आश्रम में पधारे ।

महर्षि ने प्रभु का पूजन किया तथा भोजन के लिये प्रभु को कन्दमूल फल अर्पित किये । अगस्त्य जी के वचनानुसार श्रीराघवेन्द्र ने उनसे इन्द्र का धनुष ग्रहण किया साथ ही परम प्रसन्न होकर एक तलवार तथा एक तरकस भी प्राप्त किया जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते थे । अगस्त्य जी की आज्ञा से प्रभु ने पञ्चवटी में निवास किया । पञ्चवटी में पहुँच कर प्रभु ने श्रीलक्ष्मण कुमार से कहा—सौम्य ! हम पञ्चवटी पहुँच गये, आश्रम बनाने के लिये उपयुक्त स्थान कौन होगा ? जहाँ हम लोग

1. अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।।

सुख पूर्वक निवास कर सकें – ऐसा स्थल तुम ढूंढों। जब श्रीराघवेन्द्र ने श्री लक्ष्मणकुमार से अनुकूल स्थान ढूंढ़ने को कहा तब श्री लक्ष्मणकुमार हाथ जोड़ कर श्रीकिशोरीजी के समक्ष श्रीराघवेन्द्र से बोले – प्रभो ! मैं सदा सर्वदा के लिये आपका परतंत्र हूँ, आप अपनी रुचि के अनुकूल स्थान का चयन कर आश्रम निर्माण करने के लिये मुझको आज्ञा प्रदान करें।[1] प्रभु ने श्रीलक्ष्मण कुमार से कहा था कि वैदेही मैं तथा तुम तीनों के लिये सुखप्रद देश में पर्णशाला का निर्माण करो 'त्वम् अहं चैव लक्ष्मण: ।' इस श्लोक में श्रीलक्ष्मण कुमार के भी सुखप्रद स्थल में पर्णशाला का निर्माण करने को कहा था।' श्रीलक्ष्मणकुमार को भय हो गया कि प्रभु ने मेरी स्वतंत्रता कहीं देख ली है क्या ? अतएव मेरे भी सुखप्रद स्थान की कल्पना कर रहे हैं। वास्तव में श्रीसीताराम जी की अनुकूलता में ही मेरी अनुकूलता है उनसे पृथक मेरी कोई रुचि तथा सुख नहीं हैं। 'सीता समक्षम्' का भाव यह है कि यदि कोई ज्ञात अज्ञात में मुझ से त्रुटि हो गयी हो तो प्रभु से मिलाने वाली पुरुषकार स्वरुपा श्रीकिशोरी जी उस त्रुटि को दूर कर प्रभु के सम्मुख करेंगीं। श्रीलक्ष्मण कुमार का भाव यह है

---

1. परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥

कि मेरे परतंत्र स्वरूप के अनुसार आप मुझे आज्ञा करें कि तुम इस स्थल में आश्रम का निर्माण करो – 'क्रियतामिति मां वद' यद्यपि श्रीराघवेन्द्र श्री लक्ष्मण कुमार को पूर्ण परतंत्र मानते हैं तथा उनकी अनन्य सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हैं फिर भी श्रीलक्ष्मण कुमार सदा भयभीत रहते हैं कि कहीं मुझसे स्वरूपविरुद्ध कोई कार्य न हो जाय।

इसके पश्चात् दोनों भ्राताओं ने श्री भरतजी के गुणों का अत्यन्त प्रेम पूर्वक स्मरण किया। जब श्रीलक्ष्मण-कुमार ने श्री कैकेयी माता के प्रति कुछ रोष व्यक्त किया तो प्रभु ने उनसे कहा कि तात ! माता श्रीकेकैयी जी की निन्दा तुम नहीं करो। इक्ष्वाकुनाथ श्री भरत जी की ही कथा सुनाओ। यद्यपि चौदह वर्ष तक वन में निवास करने का मेरा निश्चय दृढ़ है किन्तु श्रीभरत जी के स्नेह के कारण मेरा निश्चय बदलने लगता है तथा ऐसी बुद्धि होने लगती है कि वनवास की अवधि को पूर्ण किये बिना ही श्रीभरतजी से मिलने के लिये श्री अवध लौट जायें। इस प्रकार श्रीभरत प्रेम का यहाँ अलौकिक रूप से वर्णन किया गया है।

प्रभु के वन में निवास करते समय सभी ऋषिगण राक्षसों के वध के लिये। उनके सम्मुख आये उनके समक्ष प्रभु ने राक्षसों के वध करने की प्रतिज्ञा की उसी समय

जनस्थान निवासिनी कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखा प्रभु के पास आयी। पहले तो प्रभु से उनका परिचय पूछा बाद में उसने अपना विस्तृत परिचय दिया। प्रभु से उसने कहा मैं आप पर मोहित हूँ अतः आप मेरे पति बन जाइये। प्रभु ने उसके साथ थोड़ी देर तक विनोद वार्ता की किन्तु जब उसने श्रीजानकी जी के प्रति क्रूर भाव प्रकट किया तब श्रीलक्ष्मण कुमार के द्वारा उसको विरूप कर दिया।

पूर्वाचार्य कहते हैं कि श्रीकिशोरी जी के अपराध के कारण ही शूर्पणखा दण्डित हुई। यद्यपि वह श्रीराघवेन्द्र में आसक्त थी किन्तु प्रभु अपने आश्रितों के अपराध से रुष्ट होकर भक्त विरोधी का विनाश कर देते हैं। इस प्रसंग का यही तात्पर्य है जब शूर्पणखा खरदूषण के पास गयी तब खरदूषण ने उससे पूछा कि तेरी इस प्रकार दुर्दशा किसने की है ? उसका नाम बता ! देव दानव में कोई ऐसा वीर नहीं है जो मेरी समता करे। जिसने तुझे विरूप किया है उसके प्राण शरीर से अलग कर दूँगा। अत्यन्त क्रुद्ध अपने भाई के वचन सुनकर आँखों में आँसू भर कर शूर्पणखा बोली – जिसने मेरे नाक कान काट लिये हैं वे तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबली, कमलनयन, चीर एवं मृगचर्म धारण किये हुये महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम तथा लक्ष्मण दो भ्राता हैं। वे फलमूलाहारी, जितेन्द्रिय,

तपस्वी तथा धर्मचारी हैं। वे देखने में गन्धर्वराज की भाँति राजलक्षणों से युक्त जान पड़ते हैं। उन दोनों के मध्य में सर्वांगसुन्दरी सभी विभूषणों से भूषित युवतो भी है।

खरदूषण ने केवल प्रभु का परिचय पूछा था किन्तु उसने प्रभु के सौंदर्य माधुर्य का विशद वर्णन किया। नाक कान कटने के कारण उसकी अवस्था अत्यन्त दयनीय थी अतः प्रभु उसके शत्रु थे। शत्रु का सौन्दर्य वर्णन इस प्रकार अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। श्रोराम रूप की विशेषता है कि शत्रु भी उनके रूप गुणों का वर्णन करते हैं। तिलककार ने लिखा है कि श्रीराघवेन्द्र में दोषों का सर्वथा अभाव है एवं अनन्त कल्याण गुणों का निवास है अतः प्रभु के गुणों का वर्णन करतो हुयी उनका परिचय देती है।

जब प्रभु में एक भी दोष नहीं है तब दोष का वर्णन कैसे करती ? शूर्पणखा ने श्री राघवेन्द्र के सहज स्वरूप का असाधारण परिचय दिया है। गोस्वामीजी ने इस प्रसंग की व्याख्या मानस में विलक्षण ढंग से की है शूर्पणखा रावण से प्रभु का परिचय देती है – अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंह बन खेलन आए ॥ सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥ रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥

गोस्वामीजो ने सेना सहित खरदूषण का मोहित होना कहा है। जो श्रीराम रूप के चरम उत्कर्ष का सूचक है – प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥ ··· ··· हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं अस सुंदरताई ॥ जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरूष अनूपा ॥ इस प्रकार अभ्यास द्वारा स्थल स्थल पर पुनः पुनः श्रीराम व उनके गुणों का वर्णन है।

पहले खरदूषण की सेना मोहित हुई बाद में वे दोनों मोहित हो गये। शूर्पणखा के वचनों का श्रवण कर खर चौदह हजार राक्षसी सेना को लेकर प्रभु के साथ युद्ध करने चला। प्रभु ने सेना सहित खर दूषण तथा त्रिशिरा का वध कर दिया। वाल्मीकि रामायण में खर दूषण के साथ श्रीरघुनाथजी के युद्ध का विशद वर्णन है। युद्ध के पूर्व प्रभु ने श्रीकिशोरीजी को श्रीलक्ष्मण कुमार के साथ पर्वत की गुफा में भेज दिया। अकेले प्रभु ने राक्षसों का संहार किया। शूर्पणखा एवं अकम्पन के मुख से खर वध का समाचार रावण ने सुना। खरदूषण के वध से रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। गोस्वामीजी ने तो स्पष्ट लिखा है कि खरदूषण के वध के बाद रावण ने कहा है कि खरदूषण मेरे समान बलवान् हैं। भगवान् को छोड़कर उन्हें अन्य कौन

मार सकता है – खरदूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥

रावण को प्रभु की प्रभुता का ज्ञान हो गया। रावण ने विचार किया कि देवताओं को सुख पहुँचाने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिये यदि भगवान् ने अवतार लिया है तो मैं हठपूर्वक उनसे वैर करूँगा तथा प्रभु के बाण से प्राणों का परित्याग कर संसार सागर से पार चला जाऊँगा। मेरा शरीर तामस है इससे भजन नहीं हो सकता है अतः वैर भाव से प्रभु को प्राप्त करूँगा यह मेरा दृढ़ निश्चय है – सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा ॥ तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ॥ होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा ॥

अकम्पन ने रावण से कहा कि जनस्थान में रहने वाले खर सहित बहुत राक्षस युद्ध में मारे गये। मैं किसी प्रकार बच कर यहाँ आ गया हूँ। रावण ने पूछा तुम कैसे बच गये ? उसने कहा कि मैंने स्त्री का वेश धारण कर लिया था इसीलिये बच गया था। स्त्री वध की शंका से श्री राघवेन्द्र ने मेरा वध नहीं किया। अकम्पन की बात सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा उसने कहा कि मुझको चिढ़ा कर इन्द्र, यम, कुबेर एवं विष्णु भी सुख से नहीं रह

सकते क्योंकि मैं काल का भी काल हूँ मैं अग्नि को भस्म कर सकता हूँ तथा मृत्यु को भी मार सकता हूँ। अपने तेज से अग्नि एवं सूर्य दोनों को एक साथ जला सकता हूँ। रावण को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर अकम्पन बहुत भयभीत हुआ। उसने रावण से अभय की याचना की। रावण द्वारा अभय दान प्राप्त होने पर अकम्पन ने स्पष्ट रूप से समस्त वृत्तान्त कहा।

अकम्पन के वचन सुनकर रावण बोला – अकम्पन ! क्या श्रीराम देवराज इन्द्र एवं देवताओं को साथ लेकर जनस्थान में आये हैं ? अकम्पन ने कहा – रावण ! इन्द्र आदि देवताओं की सहायता के बिना ही श्रीराम जनस्थान में पधारे हैं। वे बड़े तेजस्वी धनुषधारियों में श्रेष्ठ, युद्ध में दिव्य अस्त्रों को चलाने में इन्द्र के समान सामर्थ्य रखते हैं। अत्यन्त पराक्रमी श्रीराम के समान ही बलवान् उनके लघु भ्राता श्री लक्ष्मण हैं। उनकी वाणी दुन्दुभी के शब्द के समान गम्भीर है तथा उनके दोनों नेत्र लाल रंग के हैं जिस प्रकार पवन की सहायता से अग्नि वन को नष्ट कर देती है उसी प्रकार राजाधिराज श्रीराम ने अपने भ्राता के साथ जनस्थान को नष्ट कर दिया है। श्रीराघवेन्द्र की सहायता के लिये बड़े बड़े देवता नहीं आये थे। श्रीराघवेन्द्र के बाणों से भयतीत होकर राक्षस लोग जहाँ जहाँ भागकर

जाते थे वहीं वे श्रीराघवेन्द्र को अपने सामने खड़ा पाते थे। इससे सुस्पष्ट है कि प्रभु ने अनेक विग्रह धारण कर राक्षसों के साथ युद्ध किया। टीकाकारों का भी यही मत है। गोस्वामी जी ने भी इसकी पुष्टि की है – सुर मुनि सभय प्रभु देखि, मायानाथ अति कौतुक करयो। देखहिं परसपर राम करि, संग्राम रिपुदल लरि मरयो॥

अकम्पन का वचन सुन कर रावण ने कहा – श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण का वध करने के लिये मैं स्वयं जनस्थान जाऊँगा। रावण के वचन सुन कर अकम्पन ने कहा – राजन्! श्रीराम के बल पौरुष का वर्णन मैं करता हूँ आप श्रवण करें। श्रीराघवेन्द्र जब क्रुद्ध हो जायें तब ब्रह्मादि देवताओं में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो उन पर विजय प्राप्त कर सकें। वे अपने बाणों से नदी के प्रवाह के वेग को भी रोक सकते हैं।[1]

"महायशाः" – इस विशेषण से श्रीराघवेन्द्र के लोक वेद प्रसिद्ध वैभव का वर्णन किया गया है तथा श्रीवामन अवतार की कथा का भी संकेत किया गया है। प्रभु के

---

1. असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः।
आपगायाः सुपूर्णायाः वेगं परिहरेच्छरैः॥.....
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः।
शक्तः स पुरुषव्याघ्रः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः॥

साक्षात्कार से अकम्पन को उनकी महिमा का जो ज्ञान प्राप्त हो गया है उसी के अनुसार उसने प्रभु के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया है। श्रीनागेशभट्ट तनिश्लोकी टीकाकार तथा महेश्वर तीर्थ कहते हैं कि इस श्लोक से कृष्णावतार की कथा का वर्णन है क्योंकि यमुनाजो ने भगवान् श्रीकृष्ण को वैसे ही मार्ग दिया था, जैसे समुद्र ने श्री राघवेन्द्र को मार्ग दिया था।[1] कुछ लोग इस श्लोक में मत्स्य अवतार का संकेत मानते हैं। सत्ताइस नक्षत्र सूर्य आदि ग्रहों के सहित आकाश मण्डल को रामभद्र खण्ड-खण्ड कर सकते हैं। डूबती हुई पृथ्वी का श्रीरामचन्द्रजी उद्धारकर सकते हैं। इस श्लोक में वाराह अवतार का स्पष्ट संकेत है।

श्रुति कहती है वाराह रूप धारण कर प्रभु ने पृथ्वी का उद्धार किया था – 'तां वाराहो भूत्वाऽहरदिति। 'श्रीमान्' इस विशेषण के द्वारा श्रीकिशोरीजो का नित्य संयोग सूचित किया गया है। विष्णु पुराण में कहा है कि भगवान् के सभी अवतारों में श्री जो साथ रहती हैं– अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी। श्री जो के सहयोग से ही संसार समुद्र में डूबते हुए जीवों का भगवान् उद्धार करते हैं।

इस प्रकार श्रीमान् इस विशेषण से परत्व का असाधारण चिह्न मोक्ष प्रदायकत्व कहा गया है। श्रीराघ-

---

1. भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः।-भागवत

वेन्द्र अपने पराक्रम से समस्त लोकों का संहार कर पुनः नवीन सृष्टि की रचना कर सकते हैं इस श्लोक में श्रीराघवेन्द्र को जगत् का कारण कहा गया है।

"विक्रमेण" का अर्थ है कि संकल्प मात्र से ही जगत की सृष्टि आदि कार्य प्रभु करते हैं। श्रुति भी कहती है — गार्गि ! परमात्मा के अनुशासन में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र आदि टिके हुये है।[1] आगे अकम्पन कहता है दशग्रीव! जिस प्रकार पापी लोग स्वर्ग को नही प्राप्त कर सकते हैं उसी प्रकार तुम राघवेन्द्र को युद्ध में परास्त नहीं कर सकते।

चौदह हजार राक्षसों के साथ विश्व रूप धारण कर युद्ध करते समय प्रभु के दर्शन से अकम्पन को श्रीरघुनाथ जी के परत्व का ज्ञान हुआ। अकम्पन कहता है रावण ! युद्ध में तो तुम श्रीरामजी का वध नहीं कर सकते किन्तु उनके वध का उपाय मैं बतलाता हूँ ध्यान देकर सुनो – उनके साथ उनकी भार्या श्रीसीता जी हैं वे सर्वांग सुन्दरी एवं स्त्रियों में श्रेष्ठ हैं। सौन्दर्य में श्रीसीता जी की समता देवी, गन्धर्वी, अप्सरा एवं दानवी नही कर सकती है फिर मनुष्य की स्त्री उनके सौन्दर्य के समान कैसे हो सकती है? जैसे बने वैसे छल – बल से तुम उनका अपहरण करो

1. एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा पृथिव्यौ विधृतौ तिष्ठतः ।।

श्रीराघवेन्द्र तो श्रीसीताजी में अत्यन्त आसक्त है अतः उनके बिना वे अपने प्राणों का तुरन्त परित्याग कर देगें। रावण ने अकम्पन के विचार को स्वीकार किया। उत्तर काण्ड में श्री अगस्त्य जी ने श्रीराघवेन्द्र को यह कथा सुनायी है कि रावण ने सनत्कुमार महर्षि से पूछा कि दैत्य-दानव आदि जो श्री हरि के द्वारा मारे गये है उनकी क्या गति होगी ? महर्षि ने कहा राजन् ! त्रिलोकी नाथ चक्रधारी भगवान् के द्वारा जिन राक्षसों का वध होगा वे भगवान् के धाम जायेगें क्योंकि भगवान् का क्रोध भी वरदान के समान हो हैं।[1]

महर्षि का वचन सुनकर रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा उनसे कहा मुझे भगवान् को प्राप्ति कैसे होगी ? महर्षि ने कहा त्रेता में भगवान् श्रीराघवेन्द्र का अवतार होगा। उनके साथ जब तुम्हारा विरोध होगा तभी तुम्हें भगवान् की प्राप्ति होगी। अगस्त्य जी कहते हैं – राघवेन्द्र ! इसीलिये दुष्ट रावण ने श्रीकिशोरीजी का अपहरण किया तथा लंका में लाकर माता की भाँति उनकी रक्षा की।[2]

इस प्रकार रावण रथ पर आरुढ़ होकर आकाशमार्ग

---

1. ये ये हताश्चक्रधरेण राजन् त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन।
   ते ते गतास्तन्निलयं नरेन्द्राः क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥
2. एतदर्थं महाबाहो रावणेन दुरात्मना।
   सुता जनकराजस्य हृता राम महामते ॥
   लंकामानीय यत्नेन मातेव परिरक्षिता ॥

से ताड़का के पुत्र मारीच के आश्रम में पहुँच गया। आतिथ्य के बाद मारीच ने रावण से पूछा – राक्षसराज ! राक्षस लोग कुशल से तो है ? शीघ्रता से यहाँ आपके आगमन से मुझे राक्षसों के कुशल में शंका होती है। रावण ने कहा – श्रीरामचन्द्र जी ने सर्वथा अजेय खरदूषण आदि सभी राक्षसों को युद्ध में मार डाला अतः श्रीरामजी की भार्या को हरण कर लाने के कार्य में तुमको मेरी सहायता करनी चाहिये। मारीच ने रावण को बहुत मना किया तथा उससे कहा कि रावण अपने से अधिक बलवान के साथ शत्रुता करनो अच्छी बात नहीं है।[1] मारीच ने रावण से कहा किस मित्र रूपी शत्रु ने तुमको श्रीसीताहरण का काम बताया है ऐसा परामर्श देकर उसने तुम्हारा घोर तिरस्कार किया है वह कौन है जो तुम्हारे ऐश्वर्य को देख प्रसन्न नहीं होता।

लंका पर अनुग्रह कर तुम सुमार्गगामी बन जाओ, तुम अपनी पत्नियों के साथ विहार करो तथा श्रीराघवेन्द्र प्रसन्न होकर अपनी भार्या के साथ विहार करें। मारीच ने जब इस प्रकार रावण को समझाया तो वह लंकापुरी लौट गया। तत्पश्चात् शूर्पणखा ने जब रावण की घोर भर्त्सना

---

1. वार्यमाणः सुबहशो मारीचेन स रावणः।
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते ॥ ४८ ॥

की तब वह पुनः मारीच के पास आने को योजना बनाने लगा। जब रावण ने शूर्पणखा से श्रीराम का परिचय पूछा तो उसने कहा कि श्री राम दीर्घबाहु, विशालनयन, चीर धारण किये हुये कामदेव के समान सुन्दर हैं। युद्ध में वे जब बाण छोड़ते थे तब मैं यह देख नहीं पाती थी कि वे कब तरकस से बाण निकालते कब उसे धनुष पर रखते तथा कब उसे छोड़ते थे। उनके बाणों की वृष्टि से राक्षसों का वध मैं अवश्य देखती थी। तीन मुहूर्त में श्रीराघवेन्द्र ने एकाकी तथा पैदल ही राक्षसों सहित खरदूषण का वध कर 'ऋषियों' को अभय कर दिया तथा स्त्री का वध करना अनुचित जानकर मुझको छोड़ दिया।

श्री राघवेन्द्र के लघु भ्राता श्री लक्ष्मणजी गुणों में तथा पराक्रम में अपने भ्राता के ही समान हैं। वे उनके अत्यन्त अनुरागी हैं तथा उनकी सेवा में सदा निरत रहते हैं। श्री लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति अपराध करने वाले का अपराध नहीं सह सकते वे श्रीराम की दक्षिण भुजा एवं शरीर के बाहर रहने वाले दूसरे प्राण के समान अत्यन्त प्रिय हैं। श्रीराम जी की धर्मपत्नी के नेत्र विशाल तथा मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सुन्दर हैं। वे श्रीराम-चन्द्रजी को अत्यन्त प्रिय तथा उनके हित साधन में तत्पर रहती हैं वे उस वन की अधिष्ठात्री देवी एवं दूसरी लक्ष्मी

को भाँति उस वन की शोभा हैं। उन क्षीण कटि वाली सुन्दरी का नाम श्रीसीता है तथा वे विदेहराज की पुत्री हैं। सामुद्रिक शास्त्रों में कहे गये स्त्रियों के समस्त लक्षणों से युक्त हैं।

इस धरा पर तो मैंने ऐसी सुन्दरी स्त्री इसके पूर्व कभी नहीं देखी थी। इस प्रकार शूर्पणखा ने श्रीलक्ष्मण कुमार सहित श्रीसीतारामजी के सौन्दर्य माधुर्य का विशद वर्णन किया। तत्पश्चात् रावण मंत्रियों से परामर्श किये बिना ही मारीच के समीप पहुँच गया। उसने पुनः खरदूषण वध की बात की तथा श्रीरामचन्द्र के प्रति अनेक मिथ्या आक्षेप किये। अपने बल के घमण्ड में विना बैर के ही मेरी बहन के नाक-कान काट उसे विरूप कर दिया अतः उनकी सुन्दरी भार्या श्रीसीता का अपहरण कर लाऊँगा तुम मेरी सहायता करो। तुम सोने का मृग बनकर सीताजी के सामने भ्रमण करना। तुमको देखकर श्रीसीताजी निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजी से कहेंगीं कि इस मृग को आप पकड़ लायें। जब श्रीराम अपने निवास से दूर चले जायेगें तब मैं श्रीसीताजी का हरण कर लाऊँगा।

रावण के मुख से श्रीराम की चर्चा सुनकर मारीच का मुख सूख गया, वह बहुत ही भयभीत हो गया। चिन्ता के कारण अपने सूखे होठों को चाटने लगा उसके

नेत्र कुछ देर के लिये खुले ही रह गये। वह मृतक की भाँति आर्त होकर रावण की ओर निहारने लगा। वह श्रीराम के पराक्रम को जानता था अतः हाथ जोड़ कर रावण से उसने अपने हित की बात कही – राजन्! ठकुरसोहाती वचन बोलने वाले बहुत लोग मिल जाते हैं किन्तु सुनने में अप्रिय और परिणाम में पथ्य-हितकारी वचनों के कहने सुनने वाले संसार में थोड़े लोग होते हैं।

श्रीराम को तुम नहीं जानते हो क्योंकि तुम्हारा गुप्तचर विभाग ठीक नहीं है। तुम्हारा स्वभाव भी चंचल है। तुम्हारे जैसे स्वेच्छाचारी निरंकुश स्वामी को पाकर समस्त राक्षसों के सहित लंकापुरी नष्ट हो जायेगी। श्रीराम को उनके पिता ने निकाला नहीं है, उन्होंने न तो मर्यादा का उल्लंघन किया है न वे लोभी हैं। न दुष्ट स्वभाव के हैं न क्षत्रिय कुल कलंक हैं। कौशल्या के आनंद को बढ़ाने वाले श्रीराम धर्म एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, वे सबके हितैषी हैं। अपने सत्यवादी पिता की प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये वन में आये हुये हैं। उनके सम्बन्ध में तुम्हें ऐसे मिथ्या वचन नहीं कहने चाहिये।

श्रीराम तो धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं, साधु स्वभाव तथा सत् पराक्रमी हैं। जैसे इन्द्र देवताओं का नायक है वैसे

ही श्रीराम समस्त लोकों के नायक हैं।[1]

'विग्रहवान् धर्म' से यहाँ श्रीरामजी को मूर्त धर्म कहा गया है। अर्थात् धर्म के साक्षात् विग्रह का दर्शन करना हो तो श्रीरामजो का दर्शन कर लेना चाहिये। श्रीराम की भार्या श्रीसीता अपने पातिव्रत धर्म से ही सुरक्षित हैं। सूर्य की प्रभा की भाँति उनका बलात् हरण कैसे संभव हो हो सकता है ? जिन श्रीराघवेन्द्र की भार्या श्रीसीताजो हैं उनका तेज अप्रमेय है। उनके तेज की तुलना संभव नहीं है। श्रीसीताजी श्रीराम के धनुष के बल से रक्षित हैं उनका हरण करने की सामर्थ्य तुझमें नहीं है।[2]

तिलककार कहते हैं – इस श्लोक में श्रीराम को अप्रेमय-माप तौल रहित कहा गया है। साथ ही श्रीराम को मन वाणी के अगोचर कहा गया है। 'यस्य सा' इस पद से श्रीसोताजी को भी परमतत्त्व सूचित किया गया है। गोविन्दराज कहते हैं – 'श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते' इस श्रुति के अनुसार श्रीसीताजो के सम्बन्ध से श्रीरामजो का अपरिच्छेद्य–असीम वैभव कहा गया है। श्रीजो के सम्बन्ध से ही भगवान् को महर्षि गण परतत्व मानते हैं। जब वेद

---

1. 'रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव॥'
2. अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने॥

शास्त्रों में पारंगत ऋषि-मुनियों ने वेदों में परतत्वों का अन्वेषण किया तब उनको वेद ने संकेत किया कि जिनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह हो वही वेदान्त वेद्य पुरुषोत्तम हैं, वही भगवान् हैं। 'रामचापाश्रयां' से श्रीरघुनाथ जी का वैभव कहा गया है। 'जनकात्मजा' - से कुल का प्रभाव वर्णित है। जनकजी के वंश में सभी राजा योगी हुए हैं, सभी विदेह कहलाते हैं। उनके कुल में उत्पन्न श्री सीताजी का उत्कर्ष अनायास सिद्ध है।

रामायण के इस श्लोक को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। पूर्वाचार्यों ने स्थल-स्थल पर इसका स्मरण किया है। पुरुषसिंह श्रीराम अपनी पतिव्रता भार्या को अपने प्राणों से प्रिय मानते हैं, उनका हरण असम्भव है। यदि तुम राम के सामने पड़ गये तो जीवित नहीं बचोगे। यदि चिरकाल तक राज्य सुख का उपभोग करना है तो श्रीराम से बैर मत करो। किसी समय मैं अपने पराक्रम के अभिमान में चूर इस पृथ्वी पर घूमता था। मैं दण्डक वन में घूम घूम कर ऋषियों का मांस खाया करता था। पश्चात् महर्षि विश्वामित्र ने मेरे भय से भयभीत होकर स्वयं महाराज श्री दशरथजी के पास जाकर उनसे श्रीराम-लक्ष्मण की याचना की। श्रीदशरथजी वात्सल्य प्रेम परवश प्रभु को नहीं देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि अभी श्रीराघव

को आयु सोलह वर्ष की भी नहीं है – 'उनषोडश वर्षों मे रामो राजोवलोचनः' वशिष्ठजो के कहने पर श्रीदशरथजी ने श्रीराम लक्ष्मण को यज्ञ रक्षा के लिये विश्वामित्रजी को सौंप दिया।

महर्षि विश्वामित्र प्रभु को साथ लेकर सिद्धाश्रम बक्सर में पधारें। महर्षि ने यज्ञ को दीक्षा ली, श्रीराम उनकी रक्षा के लिये उनके समीप उपस्थित हो गये। उस समय श्रीराम किशोर अवस्था के थे। हाथ में धनुष था मस्तक पर कुल के अनुसार शिखा थी। मयूरकंठ की द्युति की भाँति प्रतिक्षण वर्धमान बढ़ने वाला सौन्दर्य विग्रह वन को सुशोभित कर रहा था। ऋषि के संग जाते समय प्रभु की सुंदरता बर्षा कालीन नदी की भाँति उमड़ रही थी क्योंकि किशोरावस्था पूर्ण होते ही प्राकृत बालकों में भो लावण्य प्रकट होता है फिर सौन्दर्य माधुर्य सुधा के सागर प्रभु की सुंदरता का अनुमान सर्वथा असम्भव है। गोस्वामो जी ने श्रीगोतावली में लिखा है ऋषि संग हरषि चले दोऊ भाई ..... उमगत सुंदरताई। प्रभु बालचन्द्र की भाँति प्रतीत हो रहे थे। शत्रु के द्वारा श्रीराघवेन्द्र के श्रीविग्रह का इस प्रकार वर्णन करना उनके प्रति आकर्षण का ही द्योतक है।

उनके श्रीविग्रह दिव्य तथा चिन्मय नहीं होते तो

विरोधी राक्षस वर्ग मोहित नहीं होता। मारीच आगे कहता है कि जब मैं श्रीविश्वामित्र की यज्ञ वेदो की ओर दौड़ा तो श्रीराम ने एक बाण से मुझे वहाँ से सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिया। उनकी इच्छा मेरे वध करने की नहीं थी। न जाने क्यों उन्होंने मेरे प्राण बचाये ? सुबाहु आदि सभी राक्षस वहाँ मारे गये। केवल मैं ही जीवित बचा। संभव है तुम्हारे वध के लिये ही प्रभु ने मेरा वध नहीं किया था। तुम्हारे द्वार के समीप मुझको भेज दिया। श्रीसीता हरण के लिये तुम लंका से चलो तो तुम्हें मुझको अधिक ढूँढ़ना न पड़े। श्रीरघुनन्दन जानते थे कि मायामय स्वर्णमृग का रूप केवल मारीच ही धारण कर सकता है। रावण वध में सहायता मारीच ही कर सकता है। मैं तुझे मना कर रहा हूँ श्रीराम से विरोध करेगा तो शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा तुम्हारे अपराध से समस्त राक्षस मारे जायेंगे। परायी स्त्री के अपहरण से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है फिर तुम्हारे महल में हजारों स्त्रियाँ हैं उन्हीं पर तुम प्रीति करो अपने जीवन की रक्षा करो श्रीराम से विरोध छोड़ दो।

एक बार मैं पुनः दो अन्य मृग रूपी राक्षसों को साथ लेकर दण्डक वन में गया वहाँ तपस्वियों को उत्पीड़ित किया करता था। मैंने श्रीराम का भी तिरस्कार किया उनको

मारने की इच्छा से उन पर झपटा। श्रीराम ने भयंकर बाण हम सब पर छोड़े मैं तो श्रीराम के पराक्रम को जानता था मैं वहाँ से भागा किन्तु दोनों साथी मेरे उन बाणों के लगने से मारे गये। अब मैं अन्य सभी दूषित आचरणों का परित्याग कर अपने मन को वश कर तपस्वियों का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मुझे चीर तथा मृगचर्म धारण किये हुये श्रीराम प्रत्येक वृक्ष में दिखायी देते हैं। जिस प्रकार यमपाश लिये हुए यम दीख पड़े उसी प्रकार हाथ में धनुष लिये श्रीराम दीख पड़ते हैं। एक दो श्रीराम नहीं ऐसे सहस्रों राम दीख पड़ते हैं जिनसे मुझे भय लगता है। और तो क्या यह समस्त वन ही मुझे राममय दीख पड़ता है। श्रीराम से रहित स्थान में भी मुझे श्रीराम ही दीखते हैं मुझे स्वप्न में भी श्रीराम को देख कर मूर्छित हो जाना पड़ता है। जिन नामों के आदि में 'रकार' पड़ता है उनके श्रवण से भी मुझे डर लगता है। रत्न और रथ आदि शब्दों के आदि में रकार होने के कारण ये शब्द भी मुझे भयभीत कर देते हैं।[1]

श्रीगोविन्दराज कहते हैं – इस श्लोक में कहा गया है

---

1. वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
गृहीत धनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ।।
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव त्रासं संजनयन्ति में ।।

कि हृदय से प्रभु नहीं जा रहे हैं सारी दिशाओं में उनका दर्शन हो रहा है।[1] राज्याभिषेक के पश्चात् सारा जगत् राममय हो गया – रामो रामो राम इति जनानामभवन् कथाः। रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥ समस्त प्रजाओं में श्रीरामजी आ रहें हैं जा रहे हैं, श्रीरामजी सखाओं के साथ सरयू तट पर विविध क्रीड़ा कर रहे हैं। श्रीराघवेन्द्र की सवारी निकल रही है इस प्रकार समस्त प्रजाओं में केवल श्रीरामजी को ही कथायें–चर्चायें होती थीं। श्रीरामजी के राज्यासीन होने के पश्चात् सारा जगत् राममय हो गया। इस प्रकार शोक, राग, भय आदि कारणों से जो प्रभु का चिन्तन होता है उसकी जब वृद्धि होती है तब साक्षात् दर्शन हो जाता है। भय की उत्तरोत्तर भूमिका के अनुसार ही दर्शन की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है अर्थात् जितनी अधिक मात्रा में राग भय आदि होंगें उतने ही शीघ्र प्रभु का दर्शन होगा – ऐसा यहाँ अनुसंधान करना चाहिये।

मारोच कहता है कि मैं केवल प्रत्येक वृक्ष में ही श्री राम को नहीं देखता हूँ बल्कि सारा वन ही राममय दिखता है। यह दर्शन श्रीराम की माया के कारण नहीं होता

---

1. हृदयान्नापयातोऽसि दिक्षु सर्वासु दृश्यसे।

.....

क्योंकि माया के कारण यदि ऐसा दर्शन होता तो श्रीराम की उपस्थिति में ही ऐसा दर्शन होता किन्तु राम से रहित प्रदेश में भी श्रीराम का दर्शन होता है। केवल जाग्रत् अवस्था में ही नहीं किन्तु स्वप्नावस्था में भी उनका दर्शन होता है। जब मैं स्वप्न में श्रीराम को देखता हूँ तो अनेक प्रलाप करने लग जाता हूँ। केवल दर्शन दशा में ही भय नहीं होता किन्तु उनके नामों के श्रवण करते ही भय उत्पन्न होने लगता है। 'रकारादीनि' इस श्लोक में कार प्रत्यय छान्दस है। मारीच कहता है रावण! रत्न रथ आदि शब्दों के आदि अक्षर रेफ का उच्चारण करते ही हमें ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने श्रीराम नाम का ही उच्चारण किया है। जब इन शब्दों के दूसरे शब्दों का कोई उच्चारण करता है तब मेरा भ्रम दूर हो जाता है।

तिलककार कहते हैं कि सुषुप्ति दशा में चेतना नष्ट हो जाती है। तब भी उनका दर्शन पाकर चेतना लौट आती है तथा प्रलाप करने लगता हूँ। जब स्वप्न के दर्शन में इस प्रकार भय होता है तो साक्षात् दर्शन में जो भय होता है उसका वर्णन कौन कर सकता है। उनके नाम का एक अक्षर भी भय कारक है? फिर सम्पूर्ण नाम कितना भय कारक होगा इसकी कल्पना कौन कर सकता है? "स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या" गीता के इस श्लोक में नाम कीर्तन

को जो महिमा कही गयी है उसका भी यहाँ समन्वय है। मारीच कहता है रावण ! यदि तुम्हारे पास पराक्रम है तो श्रीरामजो से युद्ध करो अथवा उनके पराक्रम को सहन कर लो किन्तु किसी भी दशा में श्रीसीताजी का अपहरण कर चौर धर्म का आश्रय मत लो क्योंकि युद्ध करने में केवल तुम्हारा ही वध होगा परन्तु श्रीसीता जी के अपहरण से समस्त कुल का विनाश हो जायेगा।

यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे समक्ष श्रीराम की कथा मत करो – न ते राम कथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि'। अनेक सदाचारी साधु पुरुष भी असाधुओं के संसर्ग दोष से नष्ट हो गये हैं। मैं भी तुम्हारे अपराध के कारण नष्ट हो जाऊँगा। मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूंगा क्योंकि श्रीराम बड़े तेजस्वी एवं पराक्रमी हैं श्रीराम ने खरदूषण का वध किया इसमें उनका क्या अपराध है ? श्रीसीता जी को विनष्ट करने की इच्छा से गयी हुई शूर्पणखा को श्रीराम ने विरूपित किया तथा उनके वध के लिये आये हुए खर राक्षस का वध किया इसमें उनका क्या दोष है ? तू मेरा बन्धु है अतः तेरी भलाई के लिये ही ये सभी बातें तुझसे कहीं हैं। यदि तू मेरी बातों को नहीं मानेगा तो श्रीराम के बाणों से मारा जायेगा।

इस प्रसंग में महर्षि श्रीवाल्मीकि जी ने मारीच के

द्वारा श्रीराम के दिव्य गुणों का तथा उनके मंगलमय नाम की महिमा का जो प्रतिपादन किया है वह अत्यंत मननीय है। भगवान शंकर श्रीपार्वती जी से कहते है कि जिन शब्दों के प्रथम अक्षर में रकार होता है जैसे- रत्न, रथ, रूप, रस आदि उनका कोई उच्चारण करता है तो मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है तथा उसकी ओर मैं इस आशा से देखने लग जाता हूँ कि वह अगले अक्षर 'म' का उच्चारण करेगा।[1] नाम प्रेम की पराकाष्ठा में जिस सुख की प्राप्ति श्री शिवजी को हो रही है वही सुख भय पूर्वक नाम स्मरण से मारीच को भी हो रहा है। भेद केवल इतना ही है कि भय से स्मरण में मोक्ष तो मिलेगा किन्तु भक्ति रस नहीं। दास्य सख्य आदि अनुकूल भाव से प्रभु का भजन करना ही भक्ति कही गयी है। इस प्रसंग में केवल स्मरण की महिमा कही गयी है।

भागवत की वेद स्तुति में श्रुति कहती है कि प्रभो ! बड़े-बड़े निवृत्ति परायण योगीजन अपने प्राण मन एवं इन्द्रियों को वश में करके दृढ़ योगाभ्यास के द्वारा हृदय में आपकी उपासना करते हैं किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन योगियों को जिस पद की प्राप्ति होती है उसी

---

1. "रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति !
मनः प्रसन्नतामेति रामनामाभिशङ्कया"

की प्राप्ति शत्रुओं को भी हो जाती है जो आपसे वैर भाव रखते हुए आपका स्मरण करते हैं। ब्रज की गोपियाँ आपकी सुकुमार भुजाओं के प्रति काम भाव से आसक्त होकर जिस परमपद की प्राप्ति करतीं हैं वही पद हम श्रुतियों को भी प्राप्त होता है। यद्यपि हम आपको सदा सर्वदा एकरस अनुभव करती हैं तथा आपके चरणारविन्द का मकरन्द-रस पान किया करती हैं। वास्तव में आप समदर्शी हैं आपकी दृष्टि में उपासक के परिछिन्न – सीमित अथवा अपरिछिन्न – असीम भाव में कोई अन्तर नहीं।

श्रीधरस्वामी ने इस श्लोक के भाष्य में लिखा है कि नाथ ! आपके स्मरण का ऐसा प्रभाव है कि किसी भी भाव से आपका स्मरण हो जाये वह आपको प्राप्त कर ही लेंगें। भगवान् ने सप्तम स्कंध में भी यही बात कही है कि काम से, द्वेष से, भय तथा स्नेह से अपने मन को भगवान् में लगा कर अपने सारे पापों को धोकर अनेकों मनुष्य भगवान् को प्राप्त कर गये-जैसे काम भाव से गोपियों ने, भय से कंस ने, शिशुपाल आदि राजाओं ने द्वेष से, यदुवंशियों ने परिवार के संबंध से। श्रीनारद जी युधिष्ठिर जी से कहते हैं आप लोगों ने स्नेह से तथा हम लोगों ने भक्ति से भगवान् में मन लगाया है।[1] मानस में गोस्वामी

1. गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ।।

जी ने इसी विषय का विवेचन इन चौपाइयों से किया है - उमा राम मृदु चित करुनाकर। वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ।। देहि परमगति अस जिय जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ।।

मानस में भी मारीच ने रावण को ऐसा ही उपदेश दिया है — तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा ।। तासो तात बयरु नहि कीजै। मारे मरिअ जिआएँ जोजै ।। मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ।। सत जोजन आयउँ छन माहीं ।। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ।। भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मै देखउँ दोउ भाई ।। जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ।। रावण ने कालवश मारीच के उचित उपदेशों का आदर नहीं किया। मारीच को लेकर वह राघवेन्द्र के आश्रम में पहुँचा। मारीच ने विचार किया श्रीराम से भी मरना है रावण से भी मरना है इन दोनों में श्रीराम के हाथ से मरण श्रेष्ठ है।[1]

मारीच के सहयोग से रावण ने श्रीजानकी जी का हरण किया। श्री सीताजी मायिक विग्रह से ही लंका पधारीं

---

1. रामादपि मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोरपि मर्तव्ये वरं रामान्न रावणात् ।।

वास्तविक स्वरूप को तो अग्नि में स्थापित कर दिया। तिलककार ने कूर्म पुराण के द्वारा इस प्रसंग का विशद विवेचन किया है। हरण के पश्चात् जटायु जी ने रावण से घोर युद्ध किया तथा उसके रथ-सारथि, अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर दिये। रावण को मूर्छित कर श्रीजानकी जी को एक बार छुड़ा भी लिया अन्त में रावण ने तलवार से उनके दोनो पंख काट डाले वे पृथ्वी पर गिर पड़े। जब श्रीराघवेन्द्र श्रीजानकी जी को ढूँढते हुए गोधराज के पास पहुँचे तब उन्होंने रावण के द्वारा श्रीसीता हरण की बात प्रभु से बतायी। प्रभु ने जटायु के शरीर पर हाथ फेरा उन्होंने कहा श्रीराम जिस घड़ी में रावण ने श्रीसीता जी का हरण किया है उस घड़ी में नष्ट धन उसके स्वामी को प्राप्त हो जाता है। श्रीसीताहरण 'बिन्द' नाम के मुहूर्त में हुआ है किन्तु रावण को इसका ज्ञान नहीं था। रावण का पता बता कर गीधराज ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। प्रभु ने लक्ष्मण जी से कहा कि मैं गीधराज का दाह संस्कार करूँगा श्री गीधराज की आत्मा को सम्बोधित करते हुए श्रीराघवेन्द्र बोले जो लोक अश्वमेध आदि यज्ञ करने वालो को प्राप्त होते हैं, जो लोक अग्निहोत्र आदि कर्म करने वालों को प्राप्त होता है। जो लोक मुमुक्षुओं को प्राप्त होता है तथा जो लोक भूमिदान करने वालों को प्राप्त होता है

उन उत्तम लोकों को तुम मेरी आज्ञा से प्राप्त करो।[1] इस श्लोकों में चारो आश्रमों में रहने वाले साधकों के प्राप्त होने वाले लोकों की प्राप्ति गीधराज को हो – ऐसा प्रभु ने उन पर अनुग्रह किया।

इस श्लोक में 'अनुत्तमान् लोकान् गच्छ' सर्वश्रेष्ठ लोकों को आप प्राप्त करें, इस वचन से श्रुति प्रसिद्ध विष्णु लोक की प्राप्ति कही गयी है। नृसिंह पुराण में भी कहा गया है कि गोधराज ! आपने मेरी सेवा करते हुये मृत्यु को प्राप्त किया है अतः मेरी कृपा से आप मेरे धाम में पधारें।[2] गोधराज को भगवान् श्रीराम ने मोक्ष प्रदान किया इससे उनकी भगवत्ता स्पष्ट हो गयी। गोस्वामीजो कहते हैं श्रीराम का चित्त अत्यन्त कोमल है। श्रीरघुनाथ दीनदयालु एवं अकारण कृपालु हैं। गीध पक्षियों में अधम एवं मांसाहारी है किन्तु प्रभु ने उसे वह परम गति दी जिसकी याचना योगो जन किया करते हैं। श्री शिवजी कहते हैं – पार्वतीजो ! वे लोग भाग्यहीन हैं जो भगवान्

---

1. या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्।
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्॥
गृध्रराज ! महासत्व ! संस्कृतश्च मया व्रज॥

2: मत्कृते निधनं यस्मात्त्वया प्राप्तं द्विजोत्तम।
तस्मान्मम प्रसादेन विष्णुलोकमवाप्स्यसि॥

को छोड़कर विषयों में अनुराग करते हैं – कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।। गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी।। सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।

गोस्वामी जी को दृष्टि में श्री गीधराज को परम धाम प्रदान करने में श्रीराघवेन्द्र की अहैतुकी कृपा ही मुख्य कारण है। गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में लिखा है कि प्रीति की रीति केवल श्रीराघवेन्द्र जानते हैं क्योंकि अपने शरीर का परित्याग कर श्रीदशरथ जी ने प्रीति का निर्वाह किया ऐसे पिता से भी गीध पर प्रभु की विशेष ममता देखी गई-जानत प्रीति रीति रघुराई। नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अचल चलाई। ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता मन गरुआई। गीतावली में गोस्वामी जी लिखा है कि श्री गीधराज को देख कर प्रभु किशोरीजी को भूल गये – 'तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई। पंचस्तवीकार कहते हैं – हे श्रीराघवेन्द्र ! मैं आपसे पूछता हूँ कि जब मिथिलेशराजकिशोरीजी का हरण हो गया था तब उनके वियोग में आप इतने विह्वल हो गये थे कि आप को यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि उनका हरण किसने किया ? जब गीधराज से भेंट हुई तब उन्हें परम-

धाम कैसे प्रदान किया ? तात्पर्य यह है कि पचास हजार योजन विशाल पृथ्वी का आवरण है उससे दसगुणित विशाल जल का आवरण है इसी प्रकार अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी आवरण एक दूसरे से दशगुणित विस्तृत है। इन सप्तावरणों के ऊपर ही दिव्य लोकस्थित है। ये सभी दिव्य लोक प्रभु को दीख रहे हैं किन्तु शतयोजन समुद्र पार अवस्थित लङ्का है जहाँ श्रीमिथिलेशराज किशोरीजी विराज मान हैं वे उनको नही दीख रही हैं।[1] पशु पक्षी आदि से उनका पता पूछ रहे हैं – हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥

इस प्रकार गीधराज को मोक्ष प्रदान करने के पश्चात् श्रीराघवेन्द्र ने उनके मृत शरीर का दाह संस्कार कर दिया तथा पिण्ड दान किया। प्रभु ने उनके लिये उन मंत्रों का जप किया जिनसे परमगति की प्राप्ति होती है। स्कन्द पुराण में लिखा है कि गीधराज के दाह संस्कार की कथा श्रवण करने से मनुष्य को दिव्य लोक की प्राप्ति होती है।[2] गीतावली में गोस्वामीजी ने इस प्रसंग का विशद

---

1. पृच्छामि किञ्चन यदा किल राघवत्वे,
   मायामृगस्य वशगो मनुजत्वमौग्ध्यात् ॥
   सीता वियोग विवशः न च तद्गतिज्ञः,
   प्रादास्तदा परगतिं हि कथं खगाय ॥
2. जटायोः सस्कृतिं श्रुत्वा स्वर्लोकं याति मानवः। स्क० पु०

वर्णन किया है । इस प्रकार मारीच की सहायता से रावण ने जानकीजी का हरण कर लिया ।

जगज्जननी श्री जानकीजी के हरण से चराचर सभी जीव किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । वायु का चलना बन्द हो गया, सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया । ब्रह्माजी ने कहा कि देवताओं के कार्य सिद्ध हो गये । ऋषि-मुनियों को विश्वास हो गया कि प्रभु ने जो राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की थी उसमें जगज्जननी श्री जानकीजी के हरण से राक्षस वध की भूमिका प्रारम्भ हो गयी । श्री वचनभूषणकार कहते हैं– जिस प्रकार कारागार में बंदियों पर कृपा करने के लिये सम्राट स्वयं जाता है उसी प्रकार रावण के बन्दी गृह में निगृहीत देव, नर, नाग कन्याओं को मुक्त कराने के लिए अकारण करुणावरुणालया जगज्जननी स्वयं लंका पधारीं। यह उनका जीवों पर असाधारण करुणा का द्योतक है तथा महान् वैभव है — 'कारागृहवासकर्त्र्या वैभव उच्यते ।'

श्री जानकीजी का अन्वेषण करते हुये प्रभु जब आगे बढ़े तो कबन्ध नाम का राक्षस मिला उसकी दोनों भुजायें एक योजन लम्बी थीं । उसने अपनी लम्बी भुजायें फैला कर उन दोनों राजकुमारों को पकड़ लिया दोनों भ्राताओं ने जब उसकी दोनों भुजायें काट डालीं तब उसने कहा

मैं दनु का पुत्र हूँ। स्थूलशिरा नामक एक महर्षि के शाप से मेरा रूप विकृत हो गया। प्रार्थना करने पर महर्षि ने कहा जब भगवान् श्रीराघवेन्द्र तेरी भुजायें काट कर तेरा दाह संस्कार करेंगे तब तुम अपने पूर्व रूप को प्राप्त करोगे।

मेरे तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने दीर्घायु होने का वरदान दिया। मैंने इन्द्र को युद्ध में ललकारा इन्द्र के वज्र के प्रहार से मेरी दोनों जंघायें तथा मस्तक शरीर में घुस गये। इन्द्र ने मेरी प्रार्थना पर मुझे एक योजन लम्बी भुजायें दीं तथा मेरे पेट में मुख लगा दिया जिससे मैं पशुओं का भक्षण करता रहा। साथ ही मैं यह भी विचार करता था कि श्रीरामभद्र मेरी इन भुजाओं में अवश्य आ जायेंगे। प्रभो! मुनि का वचन सत्य हुआ। कबन्ध ने सुग्रीव से मित्रता का परामर्श दिया तथा श्रीशबरीजो के पास पधारने को कहा।

महातेजस्वी शत्रुसूदन श्रीराघवेन्द्र श्री शबरी जी के समीप पधारे। श्री शबरी जी ने श्रीरघुनंदन का भली भाँति पूजन किया। श्रीशबरी जी से मिल कर प्रभु अत्यन्त संतुष्ट हुये। नीच जाति की सीमा में स्थित श्री शबरी जी के समीप पधारे यह अतिशय सौशील्य का द्योतक है। दशरथ नन्दन श्रीराम जी की श्री शबरी जी ने सम्यक् पूजा

की।[1] साठहजार वर्ष की अवस्था व्यतीत होने पर श्रीदशरथ जी ने श्रीराघवेन्द्र को प्राप्त किया। अतः अत्यन्त आदर के साथ विविध प्रकार के पक्वान्नों का भोजन कराया किन्तु श्रीशबरी जी को प्रभु इसी समय प्राप्त हुये फिर भी श्री शबरी जो द्वारा समर्पित मधुर फल श्री दशरथ जी के पक्वान्नों से प्रभु को विशेष रुचिकर प्रतीत हुये। विनय पत्रिका में गोस्वामीजी लिखते हैं कि प्रीति की रीति केवल श्रीरघुनाथ जी ही जानते हैं। श्रीकौशल्या माता के महल में, गुरु वशिष्ठ जी के गृह में, श्रीकिशोरी जी के महल में, ससुराल में जब भी जहाँ भी पहुनाई हुयो वहाँ यही कहा कि श्रीशबरी जो के फलों की माधुरी नहीं मिलो – 'जानत प्रीति रीति रघुराई' घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भई जब जहँ पहुनाई, तहँ तहँ कही शबरी के फलनि की रुचि माधुरो न पाई॥

सिद्ध पुरुषों द्वारा सम्मानिता तपस्विनो श्री शबरीजो प्रभु से कहने लगीं – श्रीराघवेन्द्र! आपके दर्शन से आज मुझे तप का फल तथा गुरु सेवा का फल मिल गया, मेरा जन्म सफल हो गया। आपके पूजन से मुझे स्वर्ग भी मिल

---

1. सोऽभ्यगच्छन्महातेजा : शबरीं शत्रुसूदनः।
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः॥

गया ।[1]

'त्वयि देववरे राम' इस श्लोक में देववर का अर्थ है – भगवान् विष्णु । इससे स्पष्ट है कि श्री शबरी जी को भलीभाँति यह ज्ञान है कि श्रीराम परब्रह्म परतत्त्व हैं। श्री शबरी जी कहती हैं – प्रभो ! जब आप चित्रकूट में थे तब वे ऋषिगण जिनकी मैं सेवा किया करती थी दिव्य विमानों में विराजमान होकर स्वर्ग पधार गये। अब मैं गुरुदेव के श्रीचरणों में जाऊंगी जिनकी मैंने सेवा की है। जब से प्रभु चित्रकूट में पधारे शबरी जी ने प्रभु के लिये विविध प्रकार के कन्दमूल फल को एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया था। पद्मपुराण में कहा गया है कि सुपक्व, मधुरकन्दमूल फलों का स्वयं आस्वादन करके उनकी ठीक-ठीक परीक्षा कर श्री शबरी जी ने पश्चात् प्रभु को उन फलों को अर्पित किया। फलों का आस्वादन कर प्रभु ने उन्हें अपना परमधाम प्रदान किया ।[2]

---

1. "अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया ।
अद्य में सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः ।।"
अद्य में सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ।।

2. फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च ।
स्वयमास्वाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च ।।
पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढ़व्रता ।।
फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यै मुक्तिं परां ददौ – पद्मपुराण,

मानस में श्रीशबरीजी द्वारा प्रदत्त रसमय स्वादिष्ट कन्द मूल फल श्रीरामजी ने स्वीकार किये हैं तथा उनकी बार-बार प्रशंसा भी की है – कन्दमूल फल सुरस अति दिये राम कह आनि। प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि॥ श्रीशबरीजी के दिव्य चरित्र के सम्बन्ध में भक्त कवियों ने अनेक स्वतंत्र प्रबंध लिखे हैं। श्रीराघवेन्द्र से आज्ञा प्राप्त कर अपने शरीर को अग्नि में समर्पित कर प्रकाश रूप धारण कर शबरीजी स्वर्ग में चली गयीं। मानस में भी शबरीजी का प्रभु पादार विन्द में लीन होना कहा गया है – तजि जोग पावक देह हरि पद लीन्ह भइ जहँ नहिं फिरै ॥ श्री शबरीजी को परम धाम प्रदान कर प्रभु ऋष्यमूक पर्वत पर पधारे। जहाँ सुग्रीवजी निवास करते हैं। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि भक्तिपूर्वक जो अरण्यकाण्ड का पठन श्रवण करता है वह सायुज्यमोक्ष को प्राप्त करता है अरण्यकाण्ड की महिमा का जो श्रवण करता है वह श्रीरामजीकी कृपासे उनके साकेत धाम में निवास करता है। पम्पासरोवर के तट पर श्री हनुमान्‌जी से राघवेन्द्र का समागम हुआ श्री हनुमान्‌जी के वचनानुसार श्री राघवेन्द्र सुग्रीव जी से मिले।

श्रीरामायण मन्त्रद्वय का व्याख्यान माना जाता है। 'श्रीमते रामचन्द्राय नमः' यह मन्त्रद्वय है। बालकाण्ड में श्री जनकनन्दिनी के साथ प्रभु का समागम हुआ अतः मन्त्र-

द्वय में 'श्रीमत् पद की व्याख्या बालकाण्ड से की गयी। अयोध्याकाण्ड में श्रीराघवेन्द्र के प्रेम में स्त्री पुरुष, पशु पक्षी चर, अचर सभी का मोहित होना कहा गया अतः अयोध्या काण्ड द्वारा मन्त्र में श्रीराम पद की व्याख्या की गयी। अरण्यकाण्ड में पंचवटी वास पर्यन्त की कथा से मुनि जनों द्वारा प्रभु के कैंकर्य का वर्णन किया गया। मन्त्रद्वय में जो चतुर्थी विभक्ति है उसका अर्थ पञ्चवटी निवास प्रसंगों में किया गया। खर दूषण वध की कथा के द्वारा मन्त्रद्वय में 'नमः' शब्द की व्याख्या की गयी। मारीच की कथा से जीवों के भगवत्प्राप्ति के साधन का वर्णन किया गया। इसका विशेष रहस्य सन्तों के द्वारा जानना चाहिये। पम्पा सरोवर पर प्रभु ने श्री जानकीजी का स्मरण कर बहुत विलाप किया। श्री गोविन्दराज कहते हैं बाल, अयोध्या अरण्य काण्ड के ५६ सर्ग तक श्री सीतारामजी के संयोग शृङ्गार का वर्णन किया गया है आगे ६० वें सर्ग से सुवेल पर्वत पर्यन्त वियोग शृङ्गार का वर्णन महर्षि ने किया है। मधुर रस के अंगभूत अन्य रसों का भी यत्र तत्र वर्णन है। संयोग तथा विप्रलम्भ के भेद से शृङ्गार के दो भेद हैं। श्री सीतारामजी के संयोग काल को सम्भोग शृंगार रस कहते हैं तथा उनके वियोग काल को विप्रलम्भ शृङ्गार रस कहते हैं। किष्किन्धा काण्ड में प्रभु के विप्रलम्भ शृंगार

का विशद वर्णन है। प्रभु श्री लक्ष्मण कुमार से कहते हैं कि कमल के पुष्पों के केसर की सुगन्धि से मिश्रित तथा अन्य वृक्षों के मध्य होकर चलने वाला यह मनोहर पवन श्री मैथिली के नि:श्वास के समान सुगन्धियुक्त होकर बह रहा है।[1] प्रभु कहते हैं श्री जनकजो जब सभी के समक्ष श्री सीताजी का मुझसे कुशल पूछेंगे तब मैं उनको क्या उत्तर दूंगा ?[2]

दाक्षिणात्य आचार्य श्री वेदान्त देशिक स्वामी ने इस प्रसंग पर हंस संदेश नामक एक स्वतंत्र काव्य की रचना की है। पम्पासरोवर के तट पर एक हंस भ्रमण कर रहा था उसकी गति को देख कर श्री किशोरी जी की गति का स्मरण हो आया अत: हंस को दूत बना कर किशोरी जी के पास भेजा। हंस संदेश में हंस को संदेश देते समय प्रभु को श्री किशोरी जी के साथ की पूर्व लीलाओं का स्मरण हो जाता है। हंस के द्वारा संदेश प्रेषित करते हुये श्री राघवेन्द्र श्री जनकनन्दिनी से कहते हैं – हे सुन्दरि मेरे समीप में एक अशोक वृक्ष है, उसके पुष्प गुच्छ अपने लाल रंग के कारण जलती आग की तरह प्रकाशमान हैं। उसके समीप

---

1. पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनि:सृत: ।
   नि:श्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहर: ।।
2. किन्नु वक्ष्यामि राजानं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
   सीताया जनकं पृष्ट: कुशलं जनसंसदि ।।

में ऊँचे वृक्ष हैं वे अपने लाजा – लावा सदृश सफेद पुष्पों की अशोक के पुष्प गुच्छों पर वर्षा करते हैं – बिखेरते हैं। इसे देख कर मुझे हमारे विवाह काल में की गई धान के लावा की वर्षा का स्मरण हो आता है। इस प्रकार ये वृक्ष हमारे परिणय का स्मरण दिलाते हैं।[1] पुराणों महाकाव्यों तथा सन्तवाणियो में जो भगवान् के विप्रलम्भ शृंगार रस का वर्णन हुआ है उसका मूल स्रोत किष्किन्धा काण्ड ही है।

श्री लक्ष्मण कुमार सहित श्रीराघवेन्द्र का दूर से ही दर्शन कर श्रीसुग्रीव जी भयभीत हो गये। वे घबड़ाकर अपने मंत्रियों से बोले कि ये दोनों अवश्य बालि के भेजे हुये हैं। श्री हनुमान् जी ने सुग्रीव से कहा आपको व्यर्थ भय हो रहा है। यहाँ पर बालि के भय की संभावना भी नहीं है। सुग्रीव जी बोले हनुमान्जी! आजानुबाहु, कमलदल के समान विशाल नेत्र वाले धनुर्बाण धारण किये हुये देवपुत्रों के समान इन दोनों को देख कर किस को भय उत्पन्न नहीं होगा। आप अपना प्राकृत वेश बना कर उनके समीप जायें तथा चेष्टाओं से एवं वार्तालाप से उनका भेद ले आवें। आप मेरी ओर मुख कर खड़े हो जायें जिससे वार्तालाप के समय हम आपके मुख की आकृति का पता

---

1. "रक्ताशोके ज्वलति सविधे लाजवर्षाभिरामैः,
पुष्पौघैस्त्वत्परिणयदशां व्यञ्जयन्तः करञ्जाः ॥"

लगाते रहेंगें। सुग्रीव के वचनों का श्रवण कर श्रीहनुमान्जी दोनों राजकुमारों के समीप चले गये इस प्रसंग में आचार्य के द्वारा जीव भगवान् के सम्मुख हो सकता है इसका संकेत है। सुग्रीव जो आचार्य प्रवर श्रीहनुमान् जी की ओर मुख कर खड़े हैं तथा श्रीहनुमान्जी प्रभु की ओर मुख कर के खड़े हैं। जीव को प्रभु सम्मुख करने का आचार्य का यही प्रयत्न है क्योंकि जीव तो आचार्य को ही जानता है। आचार्य जीव को अपनी ओर से प्रभु के सम्मुख कर रहे हैं। प्रभु के समीप जाते समय श्रीहनुमान्जी ने अपने वास्तविक रूप को छिपा लिया तथा उन्होंने ब्रह्मचारी का वेश धारण कर लिया हनुमान् जी श्रीराम जी एवं लक्ष्मण जी के समीप गये। हनुमान् जी प्रभु के दर्शन करते ही कृतकृत्य हो आनंदसिंधु में अवगाहन करने लगे। लौकिक लीला में प्रभु के साथ भक्त शिरोमणि का यह प्रथम इष्ट दर्शन है। श्रीहनुमान् जी ने श्रीराघवेन्द्र से पूछा कि आप दोनों राजर्षि एवं देवताओं के समान तपस्वी एवं कठोर व्रतधारी प्रतीत हो रहे हैं। धैर्य सम्पन्न सुवर्ण की कान्ति के समान चीर धारण किये हुये कौन हैं ? महर्षि ने श्री राम जी को चन्द्रमा की कान्ति के समान सुंदर कहा है।[1] श्याम विग्रह में बाहर से

---

1. 'चन्द्रकान्तानन' राममतीव प्रियदर्शनम्।

गौर प्रकाश है। वृषभ की भाँति चाल चलने वाले तेजः सम्पन्न आप दोनों कौन हैं ? आपकी लम्बी भुजायें हाथी की सूंड़ के समान चढ़ाव-उतार युक्त हैं। आप दोनों के श्रीविग्रह की प्रभा से ये पर्वत प्रकाशित हो रहा है। दिव्य धाम में विहार करने वाले आप वन में क्यों विहार कर रहे हैं ? समस्त राजलक्षणों से युक्त आपके लिये राजभोग ही उचित था बनवास नहीं। आपके नेत्र कमल के समान हैं आप वीर हैं तथा जटाजूट धारण किये हुये हैं। आप दोनों की मुखाकृति एक दूसरे से मिलती-जुलती है। मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रमा तथा सूर्य अपनी इच्छा से इस धरा धाम पर उतर आये हैं। आपकी भुजायें विशाल तथा गोल परिघ के समान हैं। ये भुजायें समस्त भूषणों के धारण करने योग्य हैं फिर आपने उत्तम भूषणों से इन भुजाओं को विभूषित क्यों नहीं किया ? लोक में भूषणों से लोगों की भुजायें भूषित होती हैं किन्तु भगवान की भुजायें भूषणों को विभूषित करने वाली हैं। श्रीविग्रह को आभरणों का भी आभरण कहा गया है। इस प्रकार इन भुजाओं में भूषणों को धारण कर इनको क्यों नहीं कृतार्थ किया ? अथवा लोगों के दृष्टिदोष को दूर करने के लिये इन भुजाओं को भूषणों से क्यों नहीं आच्छादित किया ? अथवा भूषणों से आच्छादित सौन्दर्य ही हम लोगों को

बश करने में समर्थ था फिर निरावरण सौन्दर्य का प्रदर्शन आपने क्यों किया ? अथवा भूषण रहित इन भुजाओं से किस शत्रु का समूल नाश करने का संकल्प कर लिया है। इस प्रकार दिव्य साकेत धाम में विराजमान पार्षदों को छोड़ कर चार रूपों में अवतार लेने का क्या प्रयोजन हैं ?

मानस में भी श्री हनुमान जी ने प्रभु से इसी प्रकार पूछा है– श्याम गौर आप दोनों कौन हैं ?"को तुम्ह स्यामल गौर सरोरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ।। कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ।। मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ।। की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।।" वाल्मीकि रामायण में श्री हनुमान जी ने सोलह श्लोकों से प्रभु का परिचय पूछा जब उत्तर नहीं मिला तब प्रभु से बोले कि "मैं आप से इस प्रकार वार्तालाप कर रहा हूँ आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं इसका क्या कारण है ?" [1]

श्री राघवेन्द्र ने कहा हनुमान्जी आपकी मधुर वाणी श्रवण करने हेतु मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया यदि मैं उत्तर दे देता तो आपकी वाणी का श्रवण नहीं होता। तत्पश्चात् श्री हनुमान्जी ने कहा कि मैं वानरों में

---

1. एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वै नाभिभाषथ ।

मुख्य हनुमान् नामक वानर हूँ तथा वानरराज सुग्रीव द्वारा भेजा हुआ आपके सम्मुख आया हूँ। सुग्रीव आप दोनों से मित्रता करना चाहते हैं। मुझको आप पवन का पुत्र तथा सुग्रीव का मंत्री समझिये। सुग्रीव की प्रसन्नता के लिये मैंने भिक्षुक का रूप धारण किया है मैं ऋष्यमूक पर्वत से यहां आया हूँ। इस प्रकार वार्तालाप कर श्री हनुमान् जी मौन हो गये पुनः कुछ नहीं बोले। अब प्रभु की मधुर वाणी श्रवण हेतु हो श्रीहनुमान्जी मौन हो गये। तब श्रीराघवेन्द्र प्रसन्न होकर श्री लक्ष्मणजी से बोले – लक्ष्मण ! ये सुग्रीव के मंत्री हैं। वाक्यविशारद कपिश्रेष्ठ से तुम मधुर वाणी में प्रीति पूर्वक वार्तालाप करो। उन्होंने जिस प्रकार मुझ से वार्तालाप किया है वैसा ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद के ज्ञान के बिना कोई नहीं कर सकता है।[1]

श्री गोविन्दराज कहते हैं आचार्य के बिना जीवों का उद्धार संभव नहीं है अतः इस श्लोक से आचार्य की प्राप्ति का वर्णन महर्षि करते हैं। आचार्य का लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है – आचार्य को वेदों के ज्ञान से सम्पन्न भगवान् का भक्त तथा मत्सर आदि दोषों से रहित होना चाहिये। मंत्र का ज्ञाता, मंत्र का अनुष्ठान करने वाला,

---

1. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
   नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ॥

मंत्रार्थ का ज्ञान प्रदान करने वाला तथा पवित्र होना चाहिये। गुरुभक्ति से युक्त विशेष रूप से पुराणों का ज्ञाता हो। इन लक्षणों से सम्पन्न आचार्य गुरु कहे जाते हैं।[1]

ऋग्वेद के प्रति वर्ण में स्वर अधिक हैं अतः मन को एकाग्र कर सावधान होकर उसका उच्चारण करना ही ऋग्वेद में निष्णात होना है। एक एक अनुवाक् में दूसरे अनुवाकों के वाक्य साङ्कर्य को बचाते हुये यजुर्वेद का उच्चारण करना पाण्डित्य का परिचायक है। ऊह एवं रहस्य आदि तात्पर्यों से युक्त एवं विशेष गायन शैली के कारण सामवेद का ज्ञान कठिन होता है किन्तु श्री हनुमान् जी इन सभी वेदों के महान् ज्ञाता हैं अतः उनको सभी में निष्णात कहा गया। अथर्ववेद का पृथक् स्वाध्याय नहीं होता है अतः उसका पृथक् नाम नहीं लिया गया किन्तु इन वेदों में अथर्ववेद का भी अन्तर्भाव है।

'मानुषौ देव रुपिणौ' श्री हनुमान् जो ने प्रभु से कहा कि मनुष्य के रूप में आप दोनों देवताहैं-इस पद से अवतार रहस्य का उद्घाटन किया गयाहैवेद कहता है भगवान् अजन्मा होते

---

1. आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरा।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्रार्थदः शुचिः॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥

हुए भी अनेक अवतार धारण करते हैं 'अजायमानो बहुधा विजायते' यजुर्वेद के ज्ञान के बिना कोई अवतार रहस्य का इस प्रकार का विवेचन नहीं कर सकता है। 'सुवर्णाभौ पद्म पत्रेक्षणौ' आदि श्लोकों में श्री हनुमान्जी ने प्रभु से कहा है कि सुवर्ण वर्ण एवं कमल के समान नेत्र वाले आप दोनों यहाँ किसलिये विचरण कर रहे हैं ? छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि सूर्य के भीतर एक दिव्य रूप सम्पन्न पुरुष का दर्शन हो रहा है उस पुरुष के कमल के समान विशाल नेत्र हैं। इस प्रकार भगवान् के दिव्य मंगलमय विग्रह का स्पष्ट वर्णन है।[1]

सामवेद के ज्ञान के बिना इस प्रकार प्रभु के दिव्य रूप का ज्ञान असम्भव है अतः श्रीहनुमान् जी का सभी वेदों में निष्णात होना कहा गया है। श्रीराघवेन्द्र श्रीलक्ष्मण कुमार से कहते हैं कि अवश्य इन्होंने समस्त व्याकरण शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया है क्योंकि बहुत देर तक वार्तालाप करने पर भी इनके मुख से एक भी अशुद्ध शब्द का उच्चारण नहीं हुआ।[2]

---

1. 'एष अन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः'
2. नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
   बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥

केवल वेदों का ही अध्ययन इन्होंने नहीं किया प्रत्युत् व्याकरण आदि वेदांगों का भी भलीभाँति अध्ययन किया है उत्तरकाण्ड में इनको नवों व्याकरणों का ज्ञाता कहा गया है। इनके भाषण में प्रकृति, प्रत्यय, समास, सन्धि आदि किसी विषय का अभाव नहीं है। श्री हनुमान् जी ने संस्कृत भाषा में ही प्रभु से वार्तालाप किया था।

उत्तरकाण्ड में महर्षि ने हनुमान् जी के विशद चरित्र का वर्णन करते हुए कहा है – पराक्रम उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सौशील्य, वाणी में माधुर्य, गाम्भीर्य, चातुर्य, वीरता, धैर्य आदि गुणों में हनुमान्जी के समान कौन हो सकता है ? जब श्री हनुमान्जी व्याकरण शास्त्र पढ़ने के लिये सूर्य भगवान् के समीप गये तब उन्होंने सूर्य की ओर मुख कर पीठ के बल से उदयाचल से अस्ताचल तक चलते हुए व्याकरण जैसे महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय किया। वास्तव में श्री हनुमान्जी की महिमा अप्रेमय तथा अतुलनीय है।

श्री मिथिलेशराजनन्दिनीजी ने भी इनके भाषणों की प्रशंसा की है तथा इन्हें बुद्धि के आठ अंगों से युक्त कहा है। शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊह, अपोह अर्थ का ज्ञान तथा तत्व का ज्ञान ये बुद्धि के आठ अंग हैं श्री हनुमान्जी इन आठों अंगों से युक्त हैं। श्री किशोरीजी ने कहा है कि आप वायु देवता के परम धार्मिक पुत्र, प्रशंसा के योग्य हैं।

बल, वीर्य, शास्त्र ज्ञान, सत्त्व, विक्रम, दाक्ष्य, तेज, क्षमा, प्रभाव, धैर्य, विनय, दया आदि अनंत गुण आपमें एक साथ विद्यमान हैं। इस प्रकार 'नानृग्वेद' इस श्लोक से श्री हनुमान्‌जी को समस्त वेदों का ज्ञाता कहा गया है। अब आगे के चार श्लोकों से उनके शिक्षा ज्ञान की विशेषता बतलाते हैं। श्रीराघवेन्द्र कहते हैं – लक्ष्मणकुमार ! वार्तालाप के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंहें तथा शरीर के किसी भी अवयव में कोई भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। लोक में प्रायः देखा जाता है कि वार्तालाप के समय कुछ लोगों के मुख नेत्र आदि अंगों में विकृति आ जाती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर भी इनमें कोई विकृति नहीं देखने को मिली – 'न संविदितः' का यही तात्पर्य है।

शिक्षाशास्त्र में कहा गया है कि गान करके, शीघ्रता से, शिर को हिलाकर, स्वयं लिखकर पाठ करने वाले, अर्थ ज्ञान के बिना पाठ करने वाले, धीरे धीरे पाठ करने वाले ये छः प्रकार के पाठ करने वाले अधम कहे गये हैं।[1] जो पाठ करते समय शरीर के किसी अवयव को नहीं हिलाते हैं तथा जैसे तेल से पूर्ण पात्र को स्थिर होकर उठाया जाता है उसी प्रकार प्रत्येक अक्षरों को समाहित होकर उच्चारण

---

1. गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥

करते हैं वे उत्तम पाठक हैं।[1] इस प्रकार श्री मारुतनन्दन की उच्चारण शक्ति कही गई अब उनकी वाक् चतुराई का वर्णन करते हैं। इन्होंने अपने कथन को इतना विस्तृत नहीं किया कि जिससे श्रोताओं को अरुचि होने लगे, साथ ही इतना संक्षेप भी नहीं किया जिससे उसका भाव समझने में भ्रम उत्पन्न हो, बिलम्ब से वार्तालाप करने पर अपनी अशक्ति प्रकट होती है तथा शीघ्र उच्चारण करने पर दूसरों को ठीक ठीक बोध नहीं होता है। अपने वक्तव्य को व्यक्त करते समय इन्होंने न तो शीघ्रता की और न तो बिलम्ब ही किया। इनके वचन हृदयस्थ एवं कण्ठगत हैं, अर्थात् इनकी वाणी में हृदय कण्ठ दोनों का मधुर संयोग है। जिस अक्षर का जहाँ से उच्चारण होना चाहिये उसको वहीं से उच्चारण किया, इनका स्वर भी मध्यम है।[2]

शिक्षा शास्त्र में कहे गये चौदह दोषों से रहित इनकी वाणी है। शंकित, भीत, जिह्वा को घिसकर, अव्यक्त, नासिका से, काकस्वर से, ऊँचे स्वर से मस्तक पर स्वर को आरुढ़ कर, वर्णों के स्थानों से रहित, स्वरहीन, रसहीन, एक

---

1. न शिरः कम्पयेद् गात्रं भ्रुवौ चाप्यक्षिणी तथा।
   तैलपूर्णमिवात्मानं तत्तद् वर्णे प्रयोजयेत्॥
2. अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम्।
   उरः स्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे॥

वाक्य से दूसरे सर्वथा पृथक्, विषम अक्षर, [जैसे राजा का पुत्र, देवदत्त की पुस्तक ये दो विषम वाक्य हैं किन्तु कोई भूल से राजा के पुत्र देवदत्त पढ़े तो अनर्थ होगा यही विषम दोष है।] व्याकुलता के साथ, तालु से भिन्न ये चौदह पाठ के दोष शिक्षा शास्त्र में कहे गये हैं – 'पाठदोषाश्चतुर्दश'।

प्रभु श्री लक्ष्मण कुमार से कहते हैं – इनकी वाणी व्याकरण से शुद्ध है वर्णों के क्रमों से युक्त एवं व्यक्त अक्षरों से युक्त है। मन्द है न तीव्र, जो बातें कहते हैं वे अत्यंत मधुर एवं समस्त गुणों से युक्त होती हैं।[1] हृदय, कण्ठ तथा सिर इन तीन स्थानों से निकली हुई इनकी अद्भुत वाणी हाथ में तलवार लिये मारने के लिये उद्यत शत्रु के कठोर हृदय को भी पिघला देगी। अतः इनकी वाणी श्रवण कर किस सहृदय का चित्त संतुष्ट नहीं होगा।[2] इस श्लोक में श्री हनुमान् जो की वाणी की मधुरिमा कही गई 'त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया' यहाँ तीन स्थानों से व्यक्त वाणी का तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त स्वरित् से है। शिक्षा में कहा गया है अनुदात्त का उच्चारण हृदय से होता है उदात्त स्वर का

---

1. संस्कार क्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
   उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥
2. अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
   कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥

सिर से तथा स्वरित् का कंठमूल से होता है। हाथ में तलवार लेकर मारने को उद्यत शत्रु के कठोर हृदय को भी ऐसी वाणी पिघला देगो इस कथन का तात्पर्य यह है कि अत्यन्त क्रूर हृदय वाले व्यक्ति के हृदय को भी श्रीहनुमानजी की वाणी पिघलाने में जब समर्थ है तब सहृदयों को संतुष्ट कर दे इसमें क्या आश्चर्य है ?

श्री गोविन्दराज कहते हैं – श्री राघवेन्द्र एवं लक्ष्मण कुमार के साथ श्री हनुमान् जी का वार्तालाप संस्कृत भाषा में ही हुआ था।[1] श्री हनुमान् जो के बुद्धिचातुर्य की प्रशंसा प्रभु ने इसलिये की कि हनुमान् जी ने प्रकट रूप से तो प्रभु के दिव्य स्वरूप एवं सौन्दर्य, माधुर्य, शौर्य, धैर्य, चातुर्य आदि कल्याणमय गुणगणों की ही प्रशंसा की है किन्तु गुप्तरूप से उन्होंने प्रभु के कुल, गोत्र, नाम राज्यपरित्याग के कारण भी पूछ लिये हैं, यही उनका बुद्धिचातुर्य है। प्रभु कहते हैं कि ऐसे गुणवान् दूत जिस राजा के पास हों उनके समस्त कार्य अवश्य सिद्ध हो जाते हैं।

प्रभु की आज्ञा से श्रीलक्ष्मण कुमार श्रीहनुमानजी से वार्तालाप करने लगे – विद्वन् ! हम लोगों को श्रीसुग्रीव जी के समस्त गुण विदित हैं हम उन्हीं का अन्वेषण कर रहे हैं। कबन्ध ने श्रीसुग्रीव जी को भूरि-भूरि प्रशंसा की है

1. अनेन हनुमदादिभिः रामादीनां संस्कृतभाषयैव व्यवहार इति गम्यते ।।

तथा उनका पूर्ण परिचय दिया है उसने यह भी कहा है कि सुग्रीव श्री सीता जी के अन्वेषण में सहायता करेगा। वह राक्षसों के समस्त स्थानों को भलीभाँति जानता है, एक भी स्थान ऐसा नहीं जिसको वह नहीं जानता हो। बालि के भय से भयभीत सुग्रीव जो ने समस्त लोकों में भ्रमण किया है यह बात रामायण में स्पष्ट है इसीलिये श्रीसीता जी के अन्वेषण के लिये वानरों को भेजते समय एक-एक स्थान का परिचय दिया है। इस प्रकार कबन्ध ने श्रीसुग्रीव जी पर प्रभु कृपा की प्रार्थना की, श्रीशबरी जो ने भी सुग्रीव जो का परिचय दिया था।

जो लोग आचार्य निष्ठा से सम्पन्न हैं उनका कार्य आचार्य के वचनों से हो प्रभु करते हैं। आचार्य के आश्रित जोव को प्रभु से कुछ कहना नहीं पड़ता उनकी ओर से स्वयं आचार्य प्रभु से प्रार्थना करते हैं क्योंकि सुग्रीव जो ने प्रभु के सम्मुख आकर कुछ भो निवेदन नहीं किया। श्री हनुमान जो के वचनों पर विश्वास कर प्रभु ने सुग्रीव पर कृपा की। मानस में भी श्री हनुमान जो ने प्रभु से कहा है प्रभु इस पर्वत पर आपका दास सुग्रीव रहता है उससे आप मित्रता करें तथा उसे अभय प्रदान करें – नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥ तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करोजै॥

प्रभु ने मान लिया कि सुग्रीव मेरा दास है यद्यपि सुग्रीव अभी प्रभु से शंकित है। उन्होंने हनुमान जी से कहा है कि ये दोनों वीर बालि के द्वारा भेजे गये हैं। आप जाकर पता लगावें यदि ये बात सत्य हो तो मैं इस पर्वत को छोड़ कर अन्यत्र भाग जाऊँ। सुग्रीव जी को प्रभु के दर्शन के पश्चात् भी प्रभु पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। दुन्दुभी अस्थि प्रक्षेपण तालवेधन आदि असाधारण पराक्रम आदि का दर्शन कर ही प्रभु पर उनको विश्वास हुआ किन्तु यह श्री सुग्रीव जी का बाह्य स्वरूप है जो उन्होंने अपने चरित्र के द्वारा प्रकट किया है। वह हम सभी अपराधी जीवों के दुर्गुणों का संकेत मात्र है। अपराधी जीव भी आचार्य की कृपा से भगवान् का प्रिय बन सकता है।

आचार्य के द्वारा निवेदित जीव प्रमाद वश भविष्य में अपराध भी करे तो प्रभु उसके अपराधों की ओर भूल करके भी नहीं देखते। इसी बात की पुष्टि मानस में की गई है कि जिस अपराध के कारण श्रीराघवेन्द्र ने व्याध की भाँति छल से बालि का वध किया वही अपराध बाद में सुग्रीव ने किया। श्रीविभीषण जी का भी आचरण संदिग्ध रहा किन्तु श्रीरामजी ने स्वप्न में भी इन आश्रित भक्तों के दोषों की ओर ध्यान नहीं दिया – जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। सोई सुकंठ पुनि किन्ह कुचाली॥ सोइ

करतूति विभीषन केरी । स्वपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥ प्रभु ने यह दिखला दिया कि किसी जोव को यदि आचार्य स्वीकार कर लेता है तो हमें कोई आपत्ति नही होगी । चाहे जीव विश्वास करे या नहीं । चाहे जोव मेरी कितनी भी परीक्षा ले कितना हो उपहास करे हम जीव की ओर तो देखते नहीं हम तो आचार्य की ओर हो देखते हैं । आचार्य ने कह दिया कि अमुक जीव कृपा के योग्य हो बस हम कृपा की वर्षा करने लग जाते हैं । मेरो कृपा के समक्ष जीव के दोष की क्या गणना है ? सुग्रीव जो की शरणागति में श्रीहनुमान जो की कृपा हो मुख्य कारण बनो । श्री हनुमान जी के आश्रित होने के कारण ही कबन्ध ने इनको प्रशंसा की । साधन हीन सुग्रीव पर जो प्रभु की अहैतुकी कृपा हुई इस चरित्र का श्रवण श्री हनुमान जी अभी तक कर रहे हैं । इसी चरित्र के श्रवण हेतु प्रभु के साथ परधाम न जाकर कथा श्रवण का वरदान माँगा है । श्री सुग्रीव जी असाधु जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते है तो श्रीविभीषण जो साधु जीवन की पावन गाथा प्रस्तुत करते हैं । कृपा करने के लिये स्वयं पधारने वाले प्रभु को देख करके सुग्रीव पर्वत छोड़ कर भागना चाहते हैं किन्तु श्रीविभीषण जी शत्रु भ्राता होकर भी महा विश्वासपूर्वक लंका छोड़ कर प्रभु के समीप आते हैं । श्रीहनुमान जी की सहायता के

बाद भी सुग्रीव जी को प्रभु पर विश्वास नहो होता किन्तु विभीषण जी ऐसे शरणागत हैं जो वानरों के विरोध को चिन्ता न करके आकाश मार्ग से भगवान् के सामने खड़े हैं। वे वानरों से कह रहे हैं कि आप लोग व्यर्थ में हम पर रुष्ट हैं। आप लोगों को प्रभु के स्वभाव का भली-भाँति ज्ञान नहीं है। वास्तव में प्रभु मेरे ऊपर कृपा करने के लिये ही वन की ओर पधारे हैं। मानस में प्रभु ने स्पष्ट कहा है– विभीषण जी ! आप सरीखे सन्तों के लिये ही मैं अवतार धारण करता हूँ अन्य प्रयोजन नहीं है– 'तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥' अवतार का मुख्य प्रयोजन साधु परित्राण है राक्षस विनाश तथा धर्म की रक्षा आदि गौण प्रयोजन हैं।

भागवत, रामायण, गीता आदि समस्त शास्त्रों में इस विषय का विस्तृत प्रतिपादन है। जब श्रीहनुमानजी ने श्रीलक्ष्मण जी के मुख से सुना कि सुग्रीव जी का अन्वेषण करते हुये प्रभु यहाँ पधारें है तब उन्हें विश्वास हो गया कि अब बालि पर विजय निश्चित होगी। श्री राघवेन्द्र के साथ श्री सुग्रीव की मित्रता कराने का संकल्प उन्होंने उसी समय कर लिया था। स्कन्द पुराण में इस सर्ग की फल श्रुति इस प्रकार कही गयी है– मारुति प्रेषण श्रवण से सद्गुरु की प्राप्ति होती है। श्रीराम मारुति संवाद के श्रवण

से राज्य को भी प्राप्ति होती है।[1] मानस में श्रीराम चरित्र की सूची में मारुति मिलन प्रसंग का स्वतंत्र विवेचन है – प्रभु नारद संवाद कहि मारुति मिलन प्रसंग। पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥ मानस में प्रभु ने हनुमान जी को गले लगा लिया तथा उनसे कहा कि आप मुझे श्री लक्ष्मण जी से भी अधिक प्रिय हैं। शरणागति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इस प्रसंग में एक चौपाई से किया गया है वह अत्यन्त गम्भीर है। हनुमान् जो कहते हैं – प्रभो! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि आपके भजन का उपाय मैं नहीं जानता। श्रीहनुमान् जी रात दिन प्रभु का भजन करते हैं किन्तु साधन समझ कर भजन नहीं करते हैं। प्रभु की प्रसन्नता के लिये तथा अपना कैंकर्य समझ कर भजन करते हैं। साधन-साध्य दोनों शरणागत के लिये भगवान् ही होते हैं। शरणागति की गुप्त विद्या की ओर यहाँ मधुर संकेत है।

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के तात्पर्य का निर्णय करते समय मारुति मिलन तथा सुग्रीव मित्रता का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान है। प्रभु ने सुग्रीव जी से मित्रता की, श्रीलक्ष्मण कुमार ने विस्तार पूर्वक श्री राघवेन्द्र के चरित्र का वर्णन

---

1. मारुतिप्रेषणं श्रुत्वा सद्गुरुं लभते नरः।
रामभारूतिसम्वादं श्रवणाद् राज्यमाप्नुयात्॥

किया। हनुमान् जी ने जब लक्ष्मण कुमार से पूछा कि प्रभु के साथ आपका क्या सम्बन्ध है ? तब श्रीलक्ष्मणजी बोले– श्रीराघवेन्द्र अपनी ओर से मुझको अपना लघु भ्राता मानते हैं। मेरा नाम लक्ष्मण है किन्तु कृतज्ञ एवं बहुज्ञ श्रीराघवेन्द्र के सौशील्य वात्सल्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर मैं इनका दास बना हुआ हूँ।[1] यद्यपि श्रीलक्ष्मण कुमार दिव्य लक्षणों के धाम हैं। कैंकर्यलक्ष्मी सम्पन्न होने के कारण ही गुरु वशिष्ठ ने इनका नाम लक्ष्मण रखा है। ऐश्वर्य पक्ष में ये स्वयं भगवान् शेष हैं फिर भी कहते हैं कि मैं प्रभु के गुणों में आसक्त होकर इनका दास बना हुआ हूँ। प्रभु कृतज्ञ हैं – किसी प्रकार किसी जीव से थोड़ा भी उपकार हो जाये तो उसका स्मरण करते ही रहते हैं किन्तु सैकड़ों अपराधों का स्मरण नहीं रहता। जीव भूल से भी प्रभु का नाम ले लेता है, उनको नमस्कार कर लेता है, मन्दिर की परिक्रमा साधु सेवा आदि कर लेता है उनको भक्त जान कर प्रभु सदा स्मरण करते रहते हैं। स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण जी महाराज ने 'श्रीरघुवरगुण दर्पण' ग्रन्थ में प्रभु के कृतज्ञता गुण का वर्णन करते हुये कहा है कि – अपने स्नेहियों के 'कृत' अर्थात् सुकृत को विशेष रूप से जान कर उनको अंगीकार करना ही कृतज्ञता गुण का लक्षण है। ऐसो

1. अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः॥

कृतज्ञता केवल श्रीकोशलेन्द्र कुमार में ही स्पष्ट रूप से झलकती है औरों में तो कहीं कण मात्र श्रीराघवेन्द्र प्रसाद से ही प्राप्त है। सुषमायन श्रीमद्रामायण में यह गुण श्रीशवरी, जटायु, कोलभिल्ल आदि प्रसंगो में भलोभाँति प्रसिद्ध है।

सर्वगुण रूपो क्षीर में भी कृतज्ञता गुण सुधा सम मधुर है। कृतज्ञता के बिना सर्वज्ञता में स्वाद नहीं है। केवल सरकार की कृतज्ञता से ही जीव मात्र का उद्धार होता है अन्यथा महाकल्पान्त में भी उद्धार दुष्कर है। यह विचारने की बात है कि जितना कृत सुकृत सत्ययुग वालों से होता था उतना त्रेता में नहीं, त्रेता में जितना हुआ करता था, उतना द्वापर में नहीं और द्वापर के समान सुकृत कलि में नहीं होता है इसी प्रकार जो सुकृत ब्रह्मादिकों से होता है वह महामुनियों से नहीं, परन्तु श्रीजानकीविहारीजी को छोटे बड़े वे सर्व सुकृत ज्ञात होते रहते हैं। इसमें केवल कृतज्ञता गुण ही कारण है दूसरा नहीं। श्रीरघुनन्दन अपनी कृपालुता तथा कृतज्ञता विचार कर बड़ों की अपेक्षा लघु-जनों पर अधिक स्नेह करते हैं।

सत्ययुग आदि में दुष्प्राप्य पद कृपालुजो कलि में अनायास देते हैं और सकृत् एक बार जो शरण में आये उनके तिलभर अथवा नाममात्र के गुण को भी सहस्र सुमेरु सम गुरु जान कर श्री राजीवनयन जो परम पद देते हैं। यदि सरकार में कृतज्ञता नहीं होती, तो कलियुग के जीव स्वप्न में भी

कृतार्थ नहीं होते। दास के असंख्य अवगुणों को सरकार स्मरण नहीं करते हैं ऐसा अद्भुत स्वभाव कहाँ किसी में पाया जाता है। श्रीरघुनाथजी केवल पत्र, पुष्प, जल अथवा मधुर वचन से ही परम प्रसन्न हो जाते हैं तथा भक्तों को अपने आपको भी दे डालते हैं।[1]

स्वामी श्री युगलानन्यशरणजी महाराज द्वारा विरचित श्री रघुवर गुण दर्पण नामक ग्रन्थ में गुणों का विशद विवेचन है। भक्तों को उस ग्रन्थ का अवश्य अवलोकन करना चाहिये। इस प्रकार श्रीहनुमान्जी प्रभु को सुग्रीव के समीप ले गये, दोनों की मित्रता करायी। श्री सुग्रीवजी ने कहा कि मैंने श्री जानकी जी को राक्षस द्वारा हरण कर ले जाते समय देखा है। उन्होंने मुझ समेत पाँच वानरों को पर्वत पर बैठा देख उत्तरीय वस्त्र सहित उत्तम आभूषणों को ऊपर से गिरा दिया था, मैं उन्हें लाता हूँ आप उन्हें पहचानिये। उन आभूषणों को हृदय से लगा कर प्रभु ने लक्ष्मण कुमार से कहा कि तुम इसे पहचानो श्री लक्ष्मण जी बोले-प्रभो ! श्रीकिशोरीजो के बाहुभूषण केयूर तथा उनके कर्णभूषण कुण्डलों को मैं नहीं पहचानता। नित्य पाद वन्दन के समय इन नूपुरों का अवश्य दर्शन करता था अतः

---

1. तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुल्लुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

इन नूपुरों को पहचानता हूँ निश्चय ही ये किशोरी जी के हैं।[1]

विश्व के वाङ्मय में ऐसा पवित्र चरित्र कहीं नहीं है जैसा श्रीराम चरित्र में है। श्री लक्ष्मण कुमार नित्य श्री किशोरी जी के चरणों की वन्दना किया करते थे इस वाक्य से यह स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों के प्रतीक श्रीलक्ष्मण कुमार के इस पवित्र चरित्र से मानव मात्र को अनन्त काल तक प्रेरणा मिलती रहेगी। रामायण के इस महामंत्र को कण्ठहार की भाँति प्रत्येक भारतीय युवक को अपने हृदय में धारण कर अपने जीवन को सुशोभित करना चाहिये। तत्पश्चात् एकान्त में बैठ कर दोनों मित्र अपने सुख-दुःख आपस में कहने लगे। जिस प्रकार बालि के साथ सुग्रीव का वैरभाव हुआ तथा वे घर से निकाले गये वह समस्त चरित्र प्रभु को सुना दिया। प्रभु ने बालि वध की प्रतिज्ञा की –'प्रतिज्ञातं च रामेण तदा बालि वधं प्रति'। सुग्रीव ने बालि के बल का वर्णन किया तथा प्रभु को दुन्दुभि का विशाल शरीर दिखलाया। सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिये प्रभु ने अनादर पूर्वक अपने पैर के अँगूठे से दुन्दुभि की अस्थियों के समूह को अनायास ही

---

1. नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

दस योजन दूर फेंक दिया तथा एक ही बाण से सात ताल वृक्षों को पर्वतों तथा रसातल का भेदन कर डाला। प्रभु के बल का दर्शन कर सुग्रीव को उन पर विश्वास हो गया पुनः श्रीरामजी के साथ सुग्रीव ने किष्किन्धा में जाकर गर्जना की। उस महानाद को सुन कर बालि तारा को आश्वासन देकर भवन से बाहर निकला तथा सुग्रीव के साथ युद्ध करने लगा। श्रीराम जी ने एक ही बाण से बालि का वध कर दिया।

तारा ने बालि से कहा था सुग्रीव ने जिनके साथ मित्रता की है उनके बल पराक्रम की परीक्षा भली-भाँति कर ली है। अंगद के मुख से मैंने यह बात सुन ली है। यदि आप कहें कि सर्व समर्थ श्रीराम ने असमर्थ एवं निर्बल सुग्रीव का सहारा क्यों लिया ? बालि की इस प्रकार सम्भावित शंकाओं का समाधान करती हुई तारा श्रीराघवेन्द्र के परत्त्व का वर्णन करती हुई कहती है – श्रीराम साधु पुरुषों के आश्रयदाता कल्पवृक्ष के समान हैं। संकट में पड़े हुये प्राणियों के लिये परम गति हैं। आर्त पुरुषों के आश्रय, यश के एकमात्र भाजन हैं। ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न तथा माता पिता की आज्ञा में स्थिर रहने वाले हैं। सद्गुणों के बहुत बड़े भंडार हैं अतः अनन्त कल्याण गुणगण निलय श्रीराम के साथ आपका विरोध करना कदापि उचित नहीं है। तारा को श्रीराम

तत्त्व का सम्यक् ज्ञान था अतः उनकी भगवत्ता का वह वर्णन करती है।[1]

प्रभु को यहाँ 'निवास वृक्ष' कहा गया। यदि बालि कहता है कि जिस प्रकार श्रीराम सुग्रीव के सहायक हैं उसी प्रकार मेरे सहायक क्यों नही हो सकते हैं? तारा कहती है कि उनकी छाया का जो आश्रय लेता है उन्हीं के ऊपर प्रभु के कर कमलों की छाया एकरस बनी रहती है। सुग्रीव से द्रोह करने के कारण हम लोगों में साधुता का लेश भी नहीं है अतः हमारे सहायक वे नहीं हो सकते। इन श्लोकों की व्याख्या 'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण एक मीमांसा' ग्रन्थ में देखनी चाहिये तारा के इन वचनों से रामायण के तात्पर्य का निर्णय सहज में हो जाता है। तारा के समझाने पर भी बालि ने सुग्रीव से युद्ध किया तथा श्रीरामजी ने उसका वध कर दिया। श्रीराघवेन्द्र के धनुष से चलाये गये उस अस्त्र ने बालि के लिये भगवद्धाम के मार्ग को प्रकाशित कर दिया तथा उसे परमधाम पहुँचा दिया।[2]

---

1. निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परागतिः।
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः।
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान्।

2. तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम्।
रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परां गतिम्॥

बालि ने प्रभु को अनेक कटु वचन कहे। तीर्थ ने उन वचनों का स्तुति परक अर्थ किया है। गोस्वामी जी भी कहते हैं– हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा ।। बालि के हृदय में प्रीति है केवल मुख से कठोर वचन कह रहा है। प्रस्तुत प्रकरण में वाल्मीकि रामायण का श्रीराम बालि संवाद वस्तुतः लोकोत्तर है। भक्त-भगवान् का यह संवाद भक्ति के द्वारा ही मननीय है। भक्त का प्रणय कोप तथा भगवान् का भक्त प्रेम यहाँ दर्शनीय है। प्रभु ने बालि से स्पष्ट रूप से कहा-वानर! धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होता है अतः सज्जनों के लिये भी उसका स्वरूप परम दुर्ज्ञेय है। तुम्हारे सदृश लोगों के लिये उसका ज्ञान सर्वथा असम्भव है। समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान जो परमात्मा हैं वे ही सबके शुभ तथा अशुभ कर्मों को भलीभाँति जानते हैं। तात्पर्य यह है कि समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी मुझ परमात्मा के बिना सूक्ष्म धर्मों को अन्य कौन जानने में समर्थ हो सकता है ? तुम्हारे भी अन्तर्यामी होने के कारण मैं तुम्हारे पापों को भी जानता हूँ- यह व्यंग्य है। अन्त में बालि का समाधान हो गया तथा उसने प्रभु पर दोषारोपण करना छोड़ दिया उसे धर्म का ज्ञान हो गया। अपने अज्ञान के कारण श्री राघवेन्द्र पर जो व्यर्थ आक्षेप किया था उसके

लिये बालि को बड़ो व्यथा हुई ।[1]

मानस में बालि की श्रीराम भक्ति प्रसिद्ध है। जब प्रभु ने उसे प्राण रखने को कहा तो बालि बोला – प्रभा! जन्म जन्म मुनि यत्न करते हैं किन्तु अन्त में राम कहते नहीं बनता। जिस नाम के बल से शिव जो काशी में सबको मोक्ष प्रदान करते हैं वही हमारे आंखों के सामने है फिर ऐसा अवसर कब प्राप्त होगा? अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपा निधाना ।। जन्म-जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ।। जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी ।। मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।। अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।। जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागहुँ ।।

बालि वध के पश्चात् तारा ने जो श्रीरामजी के स्वरूप का वर्णन किया है वह रामायण के तात्पर्य निर्णय में समीचीन प्रमाण है। तारा कहती है – रघुनन्दन ! आप अप्रमेय हैं, भक्तिहीन पुरुष आपको नहीं पा सकते। आप जितेन्द्रिय तथा उत्तम धर्म का पालन करने वाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती, आप दूरदर्शी एवं

---

1. एवमुक्तस्तु रामेण वालिप्रव्यथितो भृशम् ।
   न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ।।

पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं। तारा ने निश्चय किया था कि मेरे स्वामी का वध करने वाले श्रीराम को अत्यन्त कठोर वचन सुनाऊँगी किन्तु भगवान श्रीराम के दर्शन करते ही उसके हृदय में सत्त्वगुण का पूर्ण विकास हो गया तथा उसका द्वेष समाप्त हो गया। अतः वह प्रभु की प्रशंसा करने लगी।[1] इस श्लोक की विशद व्याख्या श्रीमद्-वाल्मीकि रामायण एक मीमांसा ग्रन्थ में पढ़ने योग्य है।

बालि वध के पश्चात् किष्किन्धा के राज्य पर सुग्रीव का अभिषेक किया गया। सुग्रीव ने श्रीजनकनंदिनी का अन्वेषण करने के लिये चारो दिशाओं में वानरों को भेजा। श्रीहनुमान जी ने अंगद आदि प्रमुख वानरों के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में स्वयंप्रभा की गुफा में जाकर उनसे वार्तालाप किया तथा स्वयंप्रभा ने कहा कि जो एक बार इस गुफा में आता है उसका यहाँ से जीवित लौटना कठिन हो जाता है तथापि अपने तप के प्रभाव से आप सभी को इस गुफा से बाहर निकाल दूँगीं। आप सभी अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लें क्योंकि नेत्र बन्द किये बिना यहाँ से निकलना असम्भव है। सबने नेत्र बन्द कर लिये स्वयंप्रभा ने क्षण भर में सभी वानरों को बिल से

---

1. त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च, जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च।
अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च, क्षितिः क्षमावान् क्षतजोपमाक्षः॥

बाहर निकाल दिया सभी वानर समुद्र के तट पर पहुँच गये। सम्पाति नामक गीध के कहने से श्रीहनुमान्जी सौ योजन विशाल समुद्र लाँघ जाएंगे।[1]

अंगद जी की आज्ञा से वानरों ने समुद्र लाँघने में अपनी अपनी शक्ति का इस प्रकार परिचय दिया – गज ने दस योजन, गवाक्ष ने बीस, शरभ ने तीस, ऋषभ ने चालीस, गन्धमादन ने पचास, मैन्द ने साठ, द्विविद ने सत्तर, सुषेण ने अस्सी योजन तक जाने की प्रतिज्ञा की। जाम्बवान् ने नब्बे योजन तक जाने की बात कही। अंगदजी ने कहा कि मैं सौ योजन सागर को लाँघ तो जाऊँगा किन्तु वहाँ से लौटने में संदेह है। जाम्बवान् जी ने कहा-युवराज! आप तो लाखों योजन तक जाने में तथा वहाँ से लौटने में भी समर्थ हैं किन्तु जो सबको भेजने वाला स्वामी है वह किसी भाँति आज्ञा पालक नहीं हो सकता। सभी वानर आपके सेवक हैं इन्हीं में से आप किसी को भेजें। अंगद जी ने कहा आप इस सम्बन्ध में विचार करें, क्योंकि आपको सब बातों का अनुभव है। जाम्बवान् जी ने कहा – अब मैं ऐसे वीर को प्रेरित करता हूँ जो इस कार्य को अवश्य सिद्ध कर सकेगा। ऐसा कह कर श्री जाम्बवान् जी ने श्रीहनुमान

---

1. ततो गृध्रस्य वचनात्सम्पातेर्हनुमान् बली।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम्॥

जो को प्रेरित करने का संकल्प किया। इधर सभी वानर अपनी समुद्र लंघन की बात कर रहे थे उधर हनुमान् जो सब की बातें सुन रहे थे तथा एकान्त में जा कर सुख पूर्वक निश्चिन्त होकर विराजमान थे। सब वानर चिन्तित थे किन्तु हनुमान् जी को कोई चिन्ता नहीं थी।

वास्तव में समुद्र लाँघने की शक्ति एकमात्र श्रीहनुमान् जो में ही थी किन्तु जिसको अपने बल पराक्रम का भरोसा रहता है वह चिन्तित रहता है तथा जिसको प्रभु के बल पराक्रम का आश्रय होता है वह निश्चिन्त होता है अन्य वानर गण अपने बल से समुद्र पार जाना चाहते थे अतः असमर्थ सिद्ध हुए। श्री हनुमान् जी श्रीराघवेन्द्र की कृपा से समुद्र के पार जाना चाहेंगे अतः निश्चिन्त हैं। मानस में श्री हनुमान् जी ने प्रभु से कहा है कि-सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे ।। गोस्वामी जी ने नाम के बल से पाँव फैला कर निश्चिन्त होकर शयन करने की बात कही है - प्रीति राम नाम सों प्रतीति राम नाम की, प्रसाद राम नाम के पसारि पाँव सूतिहों ।।

प्रारम्भ में ही गज, गवाक्ष, गवय आदि वानरगण कह चुके हैं कि हम शत योजन सागर पार जाने में असमर्थ हैं दस से अस्सी योजन तक जाने की बात वानरों ने कही है। वास्तव में ये सभी वानर सौ योजन समुद्र को लाँघने में

समर्थ हैं क्योंकि सुग्रीव जी के समक्ष सभी कह चुके है कि पृथ्वी, पर्वत, वन, समुद्र एवं पाताल में भी हमारी गति अवरुद्ध नहीं हो सकती, कहीं भी जाने में हम समर्थ हैं। अंगद जो भी कह चुके हैं कि आप सभी की गति कहीं भी रुक नहीं सकती फिर दस से अस्सी योजन तक जाने की बात श्री हनुमान् जी को उत्साहित करने के लिये ही कही है ऐसा ही टीकाकारों का मत है। समुद्र को लाँघने में यद्यपि सभी समर्थ हैं किन्तु रावण की राजधानी लंका में प्रवेश करना, तथा जगज्जननी श्री जानकीजी का अन्वेषण करना, उनसे वार्तालाप करना, उनके प्रश्नों का उत्तर देना आदि कार्य अन्य वानर नही कर सकते थे अतः समुद्र लांघने की शक्ति रहने पर भी सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस प्रकार वानर सेना को विषाद ग्रस्त देखकर श्री जाम्बवान्जी ने श्रीहनुमान्जी से कहा — वानरराज ! आप एकान्त में आकर चुपचाप क्यों बैठे हैं ? कुछ बोलते क्यों नहीं ? आप सुग्रीव के समान पराक्रमी तथा तेज एवं बल में श्रीराम लक्ष्मण के तुल्य हैं।

सर्वशास्त्र पारंगत श्री हनुमान्जी हैं इसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है यहाँ श्रीराम जी के समान हनुमान् जी का बल कहा गया है किन्तु उत्तर काण्ड के पैंतीसवें सर्ग में श्री राघवेन्द्र ने स्वयं श्री अगस्त्य जी से

समर्थ हैं क्योंकि सुग्रीव जी के समक्ष सभी कह चुके है कि पृथ्वी, पर्वत, वन, समुद्र एवं पाताल में भी हमारी गति अवरुद्ध नहीं हो सकती, कहीं भी जाने में हम समर्थ हैं। अंगद जो भी कह चुके हैं कि आप सभी की गति कहीं भी रुक नहीं सकती फिर दस से अस्सी योजन तक जाने की बात श्री हनुमान् जी को उत्साहित करने के लिये ही कही है ऐसा ही टीकाकारों का मत है। समुद्र को लाँघने में यद्यपि सभी समर्थ हैं किन्तु रावण की राजधानी लंका में प्रवेश करना, तथा जगज्जननी श्री जानकीजी का अन्वेषण करना, उनसे वार्तालाप करना, उनके प्रश्नों का उत्तर देना आदि कार्य अन्य वानर नही कर सकते थे अतः समुद्र लांघने की शक्ति रहने पर भी सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस प्रकार वानर सेना को विषाद ग्रस्त देखकर श्री जाम्बवान्जी ने श्रीहनुमान् जी से कहा — वानरराज ! आप एकान्त में आकर चुपचाप क्यों बैठे हैं ? कुछ बोलते क्यों नहीं ? आप सुग्रीव के समान पराक्रमी तथा तेज एवं बल में श्रीराम लक्ष्मण के तुल्य हैं।

सर्वशास्त्र पारंगत श्री हनुमान्जी हैं इसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है यहाँ श्रीराम जी के समान हनुमान् जी का बल कहा गया है किन्तु उत्तर काण्ड के पैंतीसवें सर्ग में श्री राघवेन्द्र ने स्वयं श्री अगस्त्य जी से

कहा है कि जो पराक्रम हनुमान्‌जी में है, वह न काल में है न इन्द्र-कुबेर में तथा विष्णु में है। मुक्त जीव भी भगवान् के समान हो जाता है — 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' इस श्रुति में जीव को भगवान् के समान कहा गया है। जब मुक्त जीव भी भगवान् के समान हो जाता है तो श्रीहनुमान् जी तो श्री राघवेन्द्र के नित्य पार्षद हैं। अतः उन्हें श्री राघवेन्द्र के तुल्य कहा गया है यह उचित ही है। पश्चात् श्री जाम्बवान् जी ने हनुमान जी के जीवन चरित्र का वर्णन किया। जाम्बवान् जी की प्रेरणा प्राप्त कर श्री हनुमान्‌जी ने वानर सेना का हर्ष बढ़ाते हुए अपना विशाल रूप प्रकट किया।

मानस में भी श्रीजाम्बवान् जो की ही प्रेरणा से श्री हनुमान् जी पर्वताकार हो गये – "कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना। पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक बिग्यान निधाना॥ कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होहिं तात तुम्ह पाहीं॥ राम काज लगि तब अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥" सौ योजन समुद्र को लाँघने के लिये हनुमान्‌जी को सहसा बढ़ते हुये देखकर समस्त वानर शोक रहित तथा अत्यन्त हर्ष से भर गये। हनुमान् जी ने वृद्ध वानरों को 'प्रणाम कर कहा मैं वायुदेव का पुत्र हूँ अतः छलांग मारने में भी उन्हीं

के समान हूँ। मैं मेरुगिरि को हजारों बार परिक्रमा कर सकता हूँ। अपनी भुजाओं के वेग से समुद्र को भी विक्षुब्ध कर उसके जल से पर्वत, नदियों सहित समस्त जगत् को आप्लावित कर सकता हूँ।

महासागर मेरी जांघों के वेग से विक्षुब्ध हो उठेगा तब इनमें रहने वाले ग्राह आदि जलचर ऊपर आ जायेंगें। आकाश में उड़ते हुए गरुड़ के चारों ओर हजारों बार मैं घूम सकता हूँ। उदयाचल से प्रस्थान कर अस्त होने से पहले ही सूर्य का स्पर्श कर वहाँ से पृथ्वी तक आकर यहाँ पाँव रखे बिना ही पुनः सूर्य के पास तक वेग से जा सकता हूँ। चाहूँ तो समुद्रों को सोख लूँ, पृथ्वी को विदीर्ण कर दूँ, तथा पर्वतों को चूर-चूर कर दूँ। समुद्र लंघन के समय मेरा वही रूप प्रकट होगा जो त्रिविक्रम भगवान् विष्णु का हुआ था। मैं श्री विदेह राजकुमारी का दर्शन अवश्य करूँगा अतः आप लोग प्रमुदित हो जायें। शोकनाशक श्रीहनुमान् जी की बातें सुनकर श्रीजाम्बवान्जी को बड़ी प्रसन्नता हुई उन्होंने कहा मारुतनन्दन ! समस्त वानर आपके कल्याण की कामना करते हैं। कार्य सिद्धि के लिये एकाग्रचित्त से आपके लिए मंगल कृत्य स्वस्तिवाचन आदि का अनुष्ठान करेंगे। जब तक आप, यहाँ लौट कर आयेंगें तब तक हम सब आपकी प्रतीक्षा में एक पाँव से खड़े रहेंगें। हनुमान्जी

महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गये। उनका मन समुद्र लंघन को ओर एकाग्र था मन से तो वे लंका पहुँच गये अब शरीर से लंका की यात्रा करने वाले हैं।

सुन्दरकाण्ड में श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के तात्पर्य का सम्यक् निरूपण किया गया है। महर्षि ने रामायण के प्रारम्भ में ही लिखा है कि समस्त रामायण महा-काव्य श्रीसीता जी का महान् चरित्र है। श्री सीता चरित्र का उत्कृष्ट पक्ष सुन्दर काण्ड में प्रतिपादित है। रावण को श्रीहनुमान् जी का उपदेश, लंकादहन आदि चरित्र सुन्दर काण्ड में प्रमुख हैं। पूर्व में कहा जा चुका है कि श्री सीताराम युगल ही उपास्य तत्व हैं। इसका सुस्पष्ट वर्णन सुन्दर काण्ड में प्राप्त होता है। श्रीसीताराम जी का अलौकिक मनोहर रूप, अंग-प्रत्यंग का सौष्ठव, शील, स्वभाव, अवस्था और आचरण सब समान हैं इनका कुल भी परस्पर अनुरूप है। श्रीसीताजी का मन श्रीरामजो में और श्री रामचन्द्र जी का मन श्री सीताजो में प्रतिष्ठित है इसी कारण दोनों जीवित हैं, दोनों एक दूसरे की आत्मा हैं।[1] इस प्रकार युगल तत्त्व ही अखण्ड ब्रह्म है।

श्रीजानकीजी के अपूर्व शोल सौन्दर्य, पति प्रेम का दर्शन करके श्रीहनुमान्जी मुग्ध हो जाते हैं और श्रीरामजो

---

1. अस्या देव्या यथारूपं ····· मुहूर्तमपि जीवति ॥

के सौभाग्य की प्रशंसा करते हैं।

श्री हनुमान् जी के मत से विशाललोचना श्रीसीताजी के लिए ही श्री राघवेन्द्र ने बालि, कबन्ध, विराध, खर, दूषण, त्रिशिरा और जनस्थान के चौदह हजार राक्षसों का वध किया है। वानरों का दुर्लभ ऐश्वर्य इन्हीं के कारण सुग्रीव को प्राप्त हुआ तथा मैंने भी समुद्र का लंघन कर लंकापुरी का अन्वेषण किया है। ऐसी सती साध्वी पतिव्रता शिरोमणि श्री जानकीजी की प्राप्ति के लिए यदि श्रीराम समुद्र पर्यन्त पृथ्वी तथा सम्पूर्ण जगत् को भी उलट दें तो उचित ही होगा। त्रैलोक्य का सम्पूर्ण राज्य जनककुमारी की एक कला के बराबर भी नहीं हो सकता। इस प्रकार श्री हनुमान् जी ने श्री सीता चरित्र की महानता का अपूर्व वर्णन किया है।[1]

परम साध्वी श्री जानकी जी का दर्शन कर हनुमान् जी के नेत्रों से हर्ष के आँसू बहने लगे और मन ही मन उन्होंने श्री रघुनाथ जी को नमस्कार किया। श्री सीताजी के दर्शन से वे अत्यन्त उल्लसित हो गये। जिन श्रीसीताजी को हजारों लाखों वानर समस्त दिशाओं में ढूँढ रहे हैं, आज मैंने उन श्रीरामप्रिया का दर्शन कर लिया यह सोच कर अत्यन्त प्रसन्न हैं। श्रीमिथिलेश राजकुमारी अमित

---

1. अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः।.....
त्रैलोक्य राज्य सकलं सीताया, नाप्नुयात् कलाम् ॥

प्रभावशाली तथा सब जीवों पर दया करने वाले भगवान् श्रीराम की भार्या हैं अतः उन्होंने श्रीजानकीजी से वार्तालाप प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम श्रीराम कथा का वर्णन किया। मानस में भी वार्तालाप का शुभारम्भ इसी प्रकार हुआ है – रामचन्द्र गुन बरनै लगा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥ श्री रामचन्द्रजी के मधुर नाम, गुण और चरित्र को सुनाया। अन्त में श्री पवन नन्दन ने कहा – भगवान् श्रीराम सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान लोककमनीय और कुबेर की भाँति सम्पूर्ण जगत् के राजा हैं। भगवान् श्रीराम विष्णु के समान पराक्रमी तथा बहस्पति की भाँति सत्यवादी एवं मधुर भाषी हैं। श्रीराम चन्द्रजी अत्यन्त रूपवान्, रमणीय और कान्तिमान् मानो मूर्तिमान कामदेव ही हों।

सम्पूर्ण विश्व भगवान् श्रीराम की भुजाओं के आश्रय में अर्थात् उनकी छत्र छाया में विश्राम करता है।[1] महापराक्रमी श्री रामचन्द्र जी के क्रोध पूर्वक छोड़े गये प्रज्वलित अग्नि के समान बाण समरांगण में शीघ्र ही रावण का वध करेंगे।

---

1. संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह।.....
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा।.....
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः।

एतावता श्रीहनुमान्जो ने श्रीराघवेन्द्र के अपूर्व स्वरूप का वर्णन किया है। इसी के साथ श्रीजानकीजी द्वारा पूछे जाने पर श्री रामचन्द्रजी के सामुद्रिक शास्त्रोक्त सम्पूर्ण शारारिक चिह्नों का वर्णन किया है।

इस प्रकार श्रीहनुमान्जो ने जानकी जी को श्रीराम लक्ष्मण का कुशल समाचार सुनाकर आश्वस्त किया और श्री रामजो की मुद्रिका प्रदान की। श्रीजानकी जी ने हनुमान्जी को जयन्त की घटना सुना कर और चूड़ामणि देकर अपना संदेश कहा। तत्पश्चात् हनुमान जी ने अपने अग्रिम कर्तव्य का निश्चय किया। रावण के समीप जाकर वार्तालाप करने के लिये जानबूझ कर उन्होंने अशोक वाटिका का विध्वंस किया और रावण द्वारा भेजे गये राक्षसों तथा अशोक वाटिका के रक्षकों का भी वध किया। रावण के मंत्री के सात पुत्रों का, पांच सेनापतियों का और रावण पुत्र अक्षकुमार को भी युद्ध में मार डाला। ब्रह्माजी के वरदान से ब्रह्मास्त्र से अभय होने पर भी हनुमान्जी अपने स्वामी के कार्य सम्पादन हेतु इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र से बंध गये। मानस में भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं– तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा॥

इस प्रकार हनुमान्जी ने रावण के दरबार में आकर

लंकेश्वर रावण के अद्भुत ऐश्वर्य और प्रभावशाली स्वरूप को देखा। हनुमान्जी ने मन ही मन विचार किया अहो ! इस राक्षसराज का रूप कैसा अद्भुत है इसमें अनुपम धैर्य और शक्ति है। इसका आश्चर्यजनक तेज तथा सम्पूर्ण राजोचित लक्षणों से सम्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है। यदि इसमें अधर्म बलवान न होता तो यह राक्षसराज रावण इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवलोक का संरक्षक हो सकता था।

वानर के रूप में अद्भुत तेजस्वी हनुमान्जी को देख कर रावण चकित और सशंकित हो गया कि क्या इस वानर के रूप में साक्षात् भगवान् नन्दी यहाँ आ गये हैं ? जिन्होंने पूर्व काल में कैलास पर्वत पर जब मैंने उनका उपहास किया था तब मुझे उन्होंने शाप दे दिया था क्या आज वे ही तो वानर का रूप धारण करके यहाँ आये हैं ? तत्पश्चात् कुपित होकर रावण ने उनका परिचय जानना चाहा। उसके प्रश्न के उत्तर में हनुमान् जी ने कहा – रावण ! मैं इन्द्र, यम अथवा वरुण का दूत नहीं हूँ। कुबेर के साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान् विष्णु ने भी मुझे यहाँ नहीं भेजा है।[1] मैं तो अमित तेजस्वी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दूत हूँ और उन्हीं के कार्य से तुम्हारे

---

1. अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा।
धनदेन न सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः॥

पास आया हूँ।[1] मैं जन्म से ही वानर हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मै श्रीरामजी की पत्नी सीताजी का अन्वेषण करने यहाँ आया हूँ और मैंने जनकनन्दिनी श्रीजानकी जी का दर्शन यहाँ किया है। परस्त्री का हरण कर अपने घर में रखना उचित नहीं, धर्मविरुद्ध कार्य कर्ता को समूल नष्ट कर देते हैं।

लंकेश्वर ! देवता असुरों में कौन ऐसा वीर है जो श्री रामचन्द्रजी के कुपित हो जाने पर और लक्ष्मण जी के छोड़े हुये बाणों के सामने ठहर सके। तीनों लोकों में एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जो भगवान् श्रीराम का अपराध करके सुखी रह सके। अतएव धर्म और अर्थ के अनुकूल मेरी बात मानकर जानकीजी को श्री रामचन्द्रजी के पास लौटा दो। अट्टालिकाओं और गलियों से युक्त ये लंकापुरी श्रीजानकी जी के तेज और श्रीरामजी की क्रोधाग्नि से जल कर भस्म होने जा रही है। महायशस्वी श्रीरामजी चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण लोकों का संहार करके पुनः उसकी सृष्टि कर सकते हैं[2] क्योंकि जिनका नाम यश महान् है। श्रुति भी कहती है- 'न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः'।

---

1. केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्।
   दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः॥
2. सर्वान् लोकान् सुसंहृत्य सभूतान सचराचरान्।
   पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

भगवान् श्रीराम विष्णु के तुल्य पराक्रमी हैं। देवता,असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, किन्नर, पक्षी एवं अन्य समस्त प्राणियों में कहीं भी किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है जो श्रीराम जी के सामने युद्ध में टिक सके।

रावण ! सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर राजसिंह श्रीराम का ऐसा महान् अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है श्रीरामचन्द्रजो तीनों लोकों के स्वामी हैं। इस प्रसंग में श्रीहनुमान्जी ने श्रीरामजी के वास्तविक स्वरूप का अद्भुत वर्णन किया है। पूर्व में उन्होंने पृथक्-पृथक् देव, यक्ष आदि का युद्ध में न टिक सकना कहा है किन्तु अब कहते हैं कि देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष ये सब मिल कर भी युद्ध में श्रीरामजी के सामने टिक नहीं सकते। चार मुखों वाले स्वंयभू ब्रह्मा, तीन नेत्रों वाले त्रिपुरनाशक रुद्र अथवा महान् ऐश्वर्य शाली देवताओं के स्वामी इन्द्र भी समरांगण में श्रीरघुनाथ जी के समक्ष ठहर नहीं सकते।[1] श्रीमानसजी में भी हनुमान्जी ने श्रीरामजी की भगवत्ता का सुस्पष्ट वर्णन किया है – सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया।। जाके बल बिरंचि हरि

1, ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम्॥

ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।। जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ।। धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता ।। हर कोदंड कठिन जेहि भंजा । तेहि समेत नृप दल मद गंजा ।। खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अतुलित बलसाली ।। जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि । तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ।।

इस प्रकार सुन्दरकाण्ड में भी अभ्यास के द्वारा श्रीरामतत्त्व का व्याख्यान किया गया है । तत्पश्चात् लंका दहन करके पुनः श्रीजानकी जी के समीप आये, उनको आश्वस्त करके समुद्र लाँघ कर जाम्बवान्, अंगद आदि वानरों के साथ श्रारामजी के समीप आये । श्रीजानकीजी की चूड़ामणि देकर उनका कुशल समाचार सुनाया । श्रीहनुमान्जी द्वारा श्रीजानकीजी का समाचार प्राप्त कर भगवान् श्रीराम ने वानरों सहित लका के लिये प्रस्थान किया । युद्ध काण्ड में भी विभीषण शरणागति, समुद्र शोषण तथा ब्रह्मस्तुति द्वारा श्रीराम को भगवत्ता का वर्णन किया गया है ।

रावण की सभा में विभीषण जी ने ही श्रीरामजी को अजेय बतलाकर श्रीजानकी जी को लौटा देने की सलाह दी । श्रीराघवेन्द्र के भयंकर क्रोध का परिचय देते हुए

विभीषण जी ने कहा जब तक शस्त्रास्त्रों से, रत्नों से भरी हुई लंकापुरी का श्रीराम अपने बाणों द्वारा विध्वंस नहीं कर देते उससे पूर्व ही जानकी जी को लौटा दीजिये।[1] बालकाण्ड में महर्षि वाल्मीकि ने देवर्षि नारद से जिन सोलह प्रश्नों द्वारा श्री रामतत्त्व की जिज्ञासा की थी अभ्यास के द्वारा श्री रामचन्द्रजी के उन्हीं गुणों का व्याख्यान करके यहां परतत्त्व का वर्णन किया जा रहा है। "कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे" इस पंक्ति का विवेचन विभीषणजी द्वारा इस प्रसंग में तथा रावण वध आदि प्रसङ्गों में किया गया है।

जब रावण ने विभीषणजी को उचित मंत्रणा का निरादर कर दिया उस समय विभीषणजी ने अन्तरिक्ष में जाकर पुनः उसके हित की बात की तथा स्वयं श्रीराम शरण में जाने का संकल्प कर लिया। पत्नी, पुत्र सभी को छोड़कर आकाश मार्ग से वे लक्ष्मण सहित विराजमान मेघश्याम श्रीरामजी के पास पहुँचे। आकाश में स्थित होकर उन्होंने वानरों को अपना परिचय दिया। निशाचरों के राजा दुराचारी रावण का मैं छोटा भाई विभीषण हूँ। वानरों! समस्त लोकों को शरण देने वाले भगवान् श्रीराम

---

1. जितरोषं दुराधर्षं त धर्षयितुमिच्छथ।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली॥

चन्द्रजो को मेरे आगमन की सूचना देकर कहिये कि शरणार्थी विभोषण सेवा में उपस्थित है ।[1]

इस श्लोक में 'समस्त लोकों को शरण देने वाले श्री राम है' इस पंक्ति से भगवान् की अपूर्व शरणागत वत्सलता का परिचय दिया गया है । भगवान् श्रीराम कुल, विद्या, आचरण आदि पर विचार किये बिना ही सभी प्राणियों को शरण देने वाले हैं । अतः अनेक अपराध करने वाले रावण का भी शरणागति में अधिकार है । रावण के सम्बन्धो की तो बात ही क्या है ? इस प्रकार शरणागत वत्सल श्रीराम के सौलभ्य और परत्व-इन दो गुणों का प्रधान रूप से वर्णन है । वेदान्त वेद्य परब्रह्म श्री राम अवतार काल में सम्पूर्ण मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी के नेत्र गोचर हुये यह सौलभ्य की पराकाष्ठा है किन्तु साथ ही मानव अवतार में भी अपने परधाम स्थित स्वभाव का परित्याग किये बिना समस्त प्राकृत दोष गन्ध शून्य हो कर ज्ञान, शक्ति आदि अनन्त कल्याण गुणगण सम्पन्न हैं ।

इस प्रकार श्री रामजी को शरण्य गुण सम्पन्न जान कर ही विभीषण जी शरण में आये हैं इसका स्पष्टीकरण मानसकार ने किया है – नाथ दसानन कर मैं भ्राता ।

---

1. सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
   निवेदयत मां क्षिप्रं विभोषणमुपस्थितम् ॥

निसिचर बंस जनम सुरत्राता ।। सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा ।। श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।

सुग्रीव आदि मंत्रियों के मना करने पर भी भगवान् श्रीराम ने विभीषणजी को अपना लिया। उन्होंने अपना व्रत और शरणागति की महिमा को बताते हुये कहाकि जो जीव एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं आपका हूँ' ऐसा कह कर मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।[1] अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ! वह विभीषण हो या स्वंय रावण हो क्यों न हो तुम उसे ले आओ मैंने उन्हें अभयदान दिया है।[2] यद्यपि शरणागति का मुख्य फल कैंकर्य लाभ ही है किन्तु गौण फल भक्तों के मनोरथ की पूर्ति तथा लौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति भी है। इसीलिये भगवान् श्री राम ने समुद्र के जल से विभीषण जी का लंका के राज्य पर अभिषेक कर दिया। तत्पश्चात् विभीषण तथा वानर सेना सहित श्रीरघु-

---

1. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
   अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।
2. आनयैनं हरिश्रेष्ठ !दत्तमस्याभयं मया।
   विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ।।

नन्दन समुद्र पार करने के उपाय पर विचार करने लगे।

नवीन शरणागत होने के कारण तथा शरणागति का तुरंत फल प्राप्त करने के कारण विभीषणजी ने श्रीरामजी को भी समुद्र की शरणागति करने की सलाह दी। धर्मशील एवं भक्त वत्सल होने के कारण भगवान् श्रीराम ने समुद्र की शरण ली किन्तु असमर्थ की शरणागति होने के कारण प्रभु की शरणागति सफल नहीं हुई, क्योंकि समुद्र में शरण्य के गुण सर्वसमर्थ परत्त्वादि नहीं हैं। अन्त में कुपित होकर श्री रघुनाथ जी ने समुद्र को सुखाने के लिये अपनी प्रत्यंचा पर अमोघ बाण का संधान किया और कहा— सुमित्रानन्दन ! आज मैं इस समुद्र को सुखा दूंगा फिर हमारी वानर सेना पैदल ही लंका पुरी को जायेगी। यद्यपि समुद्र को अक्षोभ्य कहा गया है किन्तु कुपित होकर मैं इसे विक्षुब्ध कर दूंगा और इसकी मर्यादा को भी नष्ट कर दूंगा। इस महासागर में हलचल मचा दूंगा। इस प्रकार दुर्धर्ष भगवान् श्रीराम प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। भयंकर धनुष पर बाण चढ़ा कर उसको टंकार से सम्पूर्ण जगत् को कम्पित करते हुये अमोघ बाण का संधान किया जिससे समुद्र सहित सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे। तब समुद्र के बीच मूर्तिमान हो कर स्वयं समुद्र प्रकट हुये और विनम्रता पूर्वक क्षमा याचना की तथा उस बिशाल अमोघ बाण

को अपने उत्तर तट के द्रुमकुल्य नामक प्रदेश के पापाचारी निवासियों पर छोड़ने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् सागर ने सेतु का निर्माण कर पार जाने का उपाय बतलाया।

इस प्रकार सेतु निर्माण कर प्रभु सेना सहित समुद्र के उस पार पहुँचे। रावण ने अपने गुप्तचर शुक, सारण द्वारा श्री राम सेना का परिचय प्राप्त किया। श्री राम का संदेश लेकर– शुक सारण रावण के पास पहुँचे और कहा राक्षसराज ! विभीषण जी ने तो हमारा वध करने के लिये हमें पकड़ लिया था किन्तु अमित तेजस्वी श्री राम ने हमें मुक्त कर दिया। श्री राम जी का जैसा रूप है और उनके अस्त्र-शस्त्र हैं उससे प्रतीत होता है कि वे अकेले ही लंकापुरी को भस्म कर देंगे। सारण ने श्री राम की अपार पराक्रमी सेना का परिचय दिया। शत्रु पक्ष के विरोधी राक्षस शुक-सारण द्वारा भगवान् के जिस अद्भुत रूप बल का वर्णन हुआ है वह मननीय और विचारणीय है। एतावता अभ्यास द्वारा स्थल-स्थल पर श्री राम जी के परमार्थ स्वरूप का विवेचन किया गया है।

युद्ध में कुम्भकर्ण, अतिकाय आदि का वध हो जाने पर रावण चिन्तित हो गया और कहने लगा-कभी पराजित न होने वाले मेरे वीर राक्षसों का श्री राम ने सेना सहित संहार कर दिया। वरदान प्राप्त मेरे पुत्र

इन्द्रजित् ने दोनों भाइयों को नागपाश से बाँध लिया था वह घोर बन्धन कोई भी देवता या असुर नहीं खोल सकते थे किन्तु श्री राम लक्ष्मण उस बन्धन से मुक्त हो गये। न जाने कौन सा प्रभाव था, कैसी माया थी अथवा किसी मोहिनी औषधि आदि का प्रयोग किया गया था जिससे श्री राम लक्ष्मण उस बन्धन से मुक्त हो गये।[1]

मैं आज ऐसे किसी वीर को नहीं देखता जो युद्ध में लक्ष्मण सहित श्री राम को और सुग्रीव सहित विभीषण को नष्ट कर दे। अहो! श्री राम बड़े बलवान् हैं उनका अस्त्र बल महान् है जिनके बल विक्रम का सामना करके असंख्य राक्षस काल के गाल में चले गये। मैं उन वीर श्री राम को रोग शोक रहित निर्दोष नारायण ही मानता हूँ। इन्हीं के भय से लंकापुरी के सभी दरवाजे और सदर फाटक बंद रहते हैं।[2] आज रावण भी भगवान् की भगवत्ता से परिचित हो गया है।

रावण वध के पश्चात् मन्दोदरी के द्वारा भगवान् के जिस तात्विक स्वरूप का विवेचन किया है वह विशेष रूप

---

1. तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन वा।
   शरबन्धाद् विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥

2. तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम्।
   तद् भयाद् हि पुरी लंका पिहितद्वारतोरणा॥

से समादरणीय है। जिन श्री राम ने उनके पति का वध किया है और वे वैधव्य को प्राप्त हो गयीं हैं। उन्हीं श्री राम की भगवत्ता का वे वर्णन कर रहीं हैं – निश्चय ही श्री रामचन्द्र जी महान् योगी तथा भक्तों का योगक्षेम वहन करने वाले, सनातन परमात्मा हैं। आदि मध्य और अन्त से रहित ये महान् से भी महान् प्राकृत मंडल से परे सबका पोषण करने वाले परमेश्वर हैं। शंख, चक्र, गदा पद्म धारण करने वाले हैं। नित्य भगवती लक्ष्मी से युक्त हैं, इनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह है। श्री राम अजेय, नित्य स्थिर तथा सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर हैं। वही सत्य पराक्रमी भगवान् विष्णु समस्त लोकों का हित करने की इच्छा से मनुष्य रूप धारण कर अवतीर्ण हुये हैं।[1] वानर रूप में प्रकट हुये देवताओं के साथ आकर राक्षसों सहित आपका वध किया है क्योंकि आप देवताओं के शत्रु तथा समस्त संसार के लिये भयंकर थे। इस प्रसंग का विशेष विवेचन "श्री हनुमदुपदेश" नामक ग्रन्थ में देखना चाहिये।

श्रीरामजी की महिमा के साथ ही मन्दोदरीजी ने श्री जानकी जी की अद्भुत महिमा का भी वर्णन किया है–

---

1. व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।.....
सर्वलोकेश्वरः श्रीमांल्लोकानां हितकाम्यया॥

भगवती श्री सीता अरुन्धती और रोहिणी से भी विशिष्ट हैं । पतिव्रता शिरोमणि श्री जानकी जो वसुधा की वसुधा और श्री की भी श्री हैं। अपने स्वामी के प्रति अनन्य अनुराग रखने वाली सम्पूर्ण जगत् की पूज्यनीया श्रीसीता देवी का तिरस्कार करके तुमने अत्यन्त अनुचित कार्य किया। पतिव्रता शिरोमणि जानकीजी के तेज से जल कर ही तुम भस्म हो गये ऐसा मेरा निश्चित मत है।[1] इस प्रकार शत्रु पत्नी के द्वारा श्रीसीतारामजी के गुणों का वर्णन उनकी लोकोत्तर महिमा को प्रकट करता है।

युद्ध काण्ड के अन्त में श्रीसीताजी की अग्नि परीक्षा के पश्चात् ब्रह्म स्तुति द्वारा पितामह ब्रह्मा ने भी भगवान् के व्यापक स्वरूप का वर्णन किया है। ब्रह्मा जी ने प्रभु से कहा श्रीराम आप सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और सर्व व्यापक हैं। समस्त देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु भी आप ही हैं। पूर्व काल में वसुओं के प्रजापति ऋतधामा नामक वसु भी आप ही हैं। आप तीनों लोकों के आदि कर्ता स्वयं प्रभु हैं।[2] रुद्रों में आठवें रुद्र, साध्यों में पाँचवे

---

1. अरून्धत्यां विशिष्टां तां रोहिण्यश्चापि दुर्मते । .....
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ।।

2. कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः .....
ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ।
त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।।

साध्य आप ही हैं। दो अश्विनी कुमार आपके कान और सूर्य, चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। सृष्टि के आदि, अन्त और मध्य में आप ही दिखायी देते हैं। चक्र धारण करने वाले सर्व समर्थ भगवान् श्रीमन्नारायण, एक दाढ़ वाले पृथ्वी धारी वाराह आप ही हैं. आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टि के आदि मध्य और अन्त में सत्य रूप से विद्यमान हैं। लोकों के परमधर्म, विष्क्सेन तथा चार भुजा वाले श्रीहरि भी आप ही हैं। शार्ङ्गधन्वा हृषिकेश, अन्तर्यामी पुरुष, पुरुषोत्तम तथा अजेय हैं। नन्दक नामक खड्ग धारण करने वाले विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं।

रघुनन्दन ! देव सेना नायक तथा समस्त जनपालक आप ही हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलय के कारण हैं। आप ही भगवान् वामन तथा मधुसूदन हैं। इन्द्र को उत्पन्न करने वाले महेन्द्र, रुद्र का अन्त करने वाले शान्त स्वरूप पद्मनाभ आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागत वत्सल कहते हैं। सहस्रों शाखा रूप सींग तथा सैकड़ों विधिवाक्य रूप मस्तकों से युक्त वेदरूप महावृषभ है। तीनों लोकों के आदि कर्ता और स्वयं प्रभु हैं। सिद्ध और साध्यों के आश्रय तथा पूर्वज, यज्ञ, वषट्कार, ओंकार तथा परमात्मा आप हैं अतः आपके आविर्भाव तथा तिरोभाव को कोई नहीं

जानता । आप कौन हैं ? इसका भी किसी को पता नहीं । समस्त प्राणियों में, गौओं में, ब्राह्मणों में आप ही दिखायी देते हैं ।

समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में और नदियों में भी आपकी ही सत्ता है । आपके सहस्त्रों चरण और सैंकड़ों मस्तक और हजारो नेत्र हैं । त्रैलोक्य को धारण करने वाले विराट् पुरुष नारायण आप ही हैं । मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ, देवो सरस्वती आपकी जिह्वा हैं । मुझ ब्रह्मा ने जिनकी सृष्टि की है ये सब देवता आपके विराट् शरीर में रोम हैं । आपके नेत्रों का बन्द होना रात्रि और खुलना ही दिन है । वेद आपके संस्कार हैं आपके बिना इस जगत् का अस्तित्व नहीं है । सम्पूर्ण विश्व आपका शरोर पृथ्वो आपकी स्थिरता, अग्नि आपका कोप और चन्द्रमा प्रसन्नता है ।

पूर्वकाल में वामन अवतार के समय आपने ही तीन पगों से तीनों लोक नाप लिये थे । अत्यंत दानी दैत्यराज बलि को बांध कर इन्द्र को तीनों लोकों का राजा बनाया था । श्री सीताजी साक्षात् लक्ष्मी और आप भगवान् विष्णु हैं । भगवान् श्री कृष्ण एवं प्रजापति भी आप हो हैं ।[1]

---

1. रूद्राणामष्टमो रूद्रः साध्यानामपि पञ्चमः.....
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।

रघुवीर ! आपने रावण का वध करने के लिये ही इस लोक में मनुष्य शरीर में प्रवेश किया है। हम देवताओं का कार्य आपने सम्पन्न कर दिया। आपका दर्शन अमोघ है आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखने वाले मनुष्य भी इस भूमंडल में अमोघ होंगें। आप पुराण पुरुषोत्तम दिव्य रूप धारी परमात्मा हैं। जो आप में भक्ति रखेंगे वे इस लोक और परलोक में सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगें। इस प्रकार ब्रह्म स्तव में ब्रह्माजी द्वारा भगवान् श्री राम के विराट् रूप का वर्णन हुआ है। इसकी फल श्रुति में कहा गया है कि जो इस पुरातन दिव्य स्तोत्र का कीर्तन करेंगे उनका कभी पराभव नहीं होगा। गोविन्दराज कहते है – जो लोग राम भक्ति करने में असमर्थ हैं उन लोगों को इस स्तोत्र के पाठ से ही श्री राम भक्ति की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार अभ्यास के द्वारा सम्पूर्ण रामायण में श्री राम तत्त्व का ही वर्णन किया गया है। उत्तर काण्ड के अन्त में रामायण के उपसंहार द्वारा स्पष्ट रूप से श्री राम जी को परात्पर पुरुषोत्तम कहा गया है। ब्रह्मा जी का संदेश ले कर जब काल देवता अयोध्या पधारे तो उन्होंने भगवान् श्री राम से कहा कि हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के समय मैं माया द्वारा आपसे उत्पन्न हुआ था अतः आपका पुत्र हूँ, मुझे सर्वसंहारकारी काल कहते

हैं।[1] ब्रह्माजी ने सन्देश भेजा है कि आपने लोकों की रक्षा के लिये जो प्रतिज्ञा की थीवह पूर्ण हो गयी। पूर्वकाल में समस्त लोकों को माया द्वारा स्वंय में लीन करके आपने महासमुद्र में शयन किया था और फिर सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम मुझे उत्पन्न किया। तत्पश्चात् विशाल फण से युक्त जल में शयन करने वाले अनंत संज्ञक नाग को प्रकट कर मधु-कैटभ नामक दो महाबली जीवों को जन्म दिया। इन्हीं के अस्थि समूह से भरी हुई पर्वतों सहित पृथ्वी तत्काल प्रकट हुयी जो मेदिनी कहलाती थी।

जब आपके नाभि से सूर्य तुल्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट हुआ तो आपने मुझे भी उत्पन्न किया और सृष्टि रचने का कार्य-भार मुझ पर रख दिया। तब मैंने आप जगदीश्वर की उपासना करके प्रार्थना की - प्रभो ! आप सम्पूर्ण प्राणियों में विराजमान होकर उसकी रक्षा कीजिये क्योंकि आप ही मुझे तेज प्रदान करने वाले हैं। आपने मेरा अनुरोध स्वीकार करके प्राणियों की रक्षा के लिये अपरिमेय सनातन पुरुष, सर्वावतारी परवासुदेव स्वरूप विष्णु रूप धारण किया।

जब रावण के द्वारा प्रजा का विनाश होने लग उस

---

1. तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरंजय।
मायासम्भावितो वीर कालः सर्वसमाहरः।।

समय आपने उसके वध की इच्छा से मनुष्य शरीर में अवतार लेने का निश्चय किया और ग्यारह हजार वर्षों तक मर्त्यलोक में निवास करने की अवधि निश्चित की। मनुष्य लोक में अपने संकल्प से ही आप श्रीदशरथजी के पुत्र रूप में प्रकट हुये हैं। इस अवतार में जितनी अवधि निश्चित थी वह पूरी हो गयी अतः अब आपका धाम पधारने का समय है। यदि और अधिक काल तक रह कर प्रजा पालन की इच्छा हो तो आप रह सकते हैं। यदि परमधाम पधारने का विचार हो तो अवश्य पधारें।

आपके स्वधाम में प्रतिष्ठित होने पर सम्पूर्ण देवता सनाथ एवं निश्चिन्त हो जायेंगे।[1] ब्रह्मा जी का संदेश सुन कर हँसते हुए भगवान् श्री राम ने कहा मेरे अवतार का उद्देश्य पूर्ण हो गया अतः अब मैं जहाँ से आया था वहीं जाऊँगा।

इस प्रकार अन्त में भगवान् श्री राम ने परधाम गमन की तैयारी की। महर्षि वशिष्ठ जी के आग्रह से अयोध्या के समस्त जड़ चेतन प्राणी भगवान् श्री राम के साथ

---

1. संक्षिप्य हि पुरा लोकान मायया स्वयमेव हि।
महार्णवे शयानोऽप्सु भां त्वं पूर्वमजीजनः॥.....
अथ वा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव।
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः॥

परधाम गमन के लिये उनके पीछे पीछे गये। भ्राताओं सहित भगवान् श्रीराम ने अपने वैष्णव धाम में प्रवेश किया।[1] गोप्रतार घाट पर आकर सभी ने सरयू जल में अवगाहन किया और दिव्य शरीर प्राप्त कर विमान पर बैठ गये। स्थावर जंगम सभी प्राणी भगवान् के परमधाम में पहुँच गये।

उपक्रम उपसंहार तथा अभ्यास द्वारा श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के तात्पर्य का निर्णय किया गया। अब अपूर्वता, फल, अर्थवाद एवं उपपत्ति पर संक्षेप में विचार किया जाता है।प्रमाणान्तर की अप्राप्ति को 'अपूर्वता' कहा गया है। श्रीरामजी परतत्त्व हैं इस विषय का प्रतिपादन करने वाला श्रीमद्रामायण को छोड़कर अन्य ग्रन्थ नहीं है। एकमात्र इसी ग्रन्थ से श्रीराघवेन्द्र परतत्त्व हैं इस विषय का निश्चय होता है। 'फल' भगवान् श्रीराम के सालोक्य-साकेतधाम की प्राप्ति ही इस ग्रन्थ का फल है जो ग्रन्थ के अन्त में स्पष्ट रूप से वर्णित है। भगवान् श्रीराम अपनी समस्त प्रजाओं के साथ साकेत पधारे इस विषय का प्रतिपादन उत्तरकाण्ड के अन्त में विस्तार पूर्वक वर्णित है।

अर्थवाद तथा उपपत्ति-बालकाण्ड में स्पष्टरूप से वर्णित है। एक बार देवगण ब्रह्माजी के समीप पधारे तथा उनसे

---

१. वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाऽऽकाशं सनातनम्।··· ··· ···
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥

पूछा कि श्री विष्णु तथा श्री शिवजी इन दोनों में कौन अधिक बली है ? ब्रह्माजी ने विचार किया कि केवल उपदेश से देवताओं का समाधान नहीं होगा अतः क्रिया के द्वारा ही समाधान करने की दृष्टि से दोनों में विवाद उत्पन्न कर दिया।

श्रीशिवजी से कहा कि वाराह रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने भूमि का उद्धार किया था तब आपने वाराह भगवान् की स्तुति करते समय कहा था कि भगवान् विष्णु मुझसे अधिक बली हैं। अभी त्रिपुरासुर के वध करने से तो आप अधिक बलवान् प्रतीत होते हैं। श्रीशिवजो बोले वास्तव में धनुर्धारियों में हम प्रथम हैं विष्णु भगवान् तो मेरे आश्रित हैं। जब ब्रह्माजो ने श्रीशिवजी की बात सुनाई तो विष्णु भगवान् बोले कि शिवजी के बाण के अग्रभाग में हम विराजमान हो गये थे इसीसे श्रीशिवजी ने त्रिपुरासुर का वध किया अतः बली हम हैं शिवजो मेरे अधान हैं। इस प्रकार दोनों में विवाद उत्पन्न कर दिया और फिर दोनों का विशाल युद्ध हुआ। अन्त में विष्णु भगवान् ने अपने हुँकार से शिवजी को स्तम्भित कर दिया पुनः ब्रह्मा ने दोनों को मिला दिया। भगवान् विष्णु बोले-शिवजो मेरे सखा एवं अनन्य सेवक हैं अतः मेरे सदा कृपा भाजन रहे हैं आगे भो रहेंगे। श्रीशिवनी तो विरक्त शिरोमणि तथा

भक्त शिरोमणि भी हैं। उन्होंने ब्रह्मा से कहा महाराज ! हम दोनों को आपने व्यर्थ में लड़ा दिया। अपने स्वामी से पराजित होने से मुझे लज्जा नहीं है। इस पराजय से हममें कोई दोष आ गया ऐसी बात नहीं है। तभी तो भागवत में कहा गया है कि 'वैष्णवानां यथा शम्भु:।' वैष्णवों में जैसे श्रीशिवजी श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है। यहाँ युक्ति से विष्णु भगवान् की श्रेष्ठता कही गई है अत: उपपत्ति वचन भी सिद्ध हो गया तथा प्रभु की प्रशंसा भी हुई कि भगवान् ने श्री शिवजी को पराजित कर देवताओं के समक्ष अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। मीमांसक कहते हैं कि विधि की स्तुति में अर्थवाद का तात्पर्य है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में संकेत किया गया था कि दार्शनिक परम्परा के अनुसार उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति—इन छह प्रकार के तात्पर्य निर्णायक वाक्यों द्वारा श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के तात्पर्य का निर्णय किया जाता है। यह भी कहा गया कि इन छह वाक्यों में 'अभ्यास' का विशेष महत्त्व है पूर्वाचार्यों ने भी 'अभ्यास' का महत्त्व स्वीकार किया है। इस विषय का भी विवेचन पूर्व में किया गया।

अब इस 'सीताया: चरितं महत्' को श्री सीताराम

जी को ही समर्पण करते हैं। इसके प्रथम श्रोता के रूप में श्रीरघुनाथजी प्रसिद्ध हैं क्योंकि अपनी प्राणसमा हितकारिणी श्री जनकराजनन्दिनी की कथा श्रवण करते हैं, उनकानाम लेकर जागते हैं – 'सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रति बुध्यते। श्री सीते-सीते ऐसी मधुर वाणी बोलते हुए जागते हैं। श्री विदेहवंश वैजयन्ती श्री विदेहराजनन्दिनीजी भी अपने प्रियतम प्राणवल्लभ श्री रघुनन्दन की मधुर कथा श्रवण करती हैं तथा श्री रामनामामृत का पान करती हैं–रामेति रामेति·····। रामचन्द्र गुन बरनै लागा सुनतहिं सीता कर दुख भागा।

इसीलिये भक्तजन श्रीसीताराम युगल की कथा सुधा का पान करते हैं। श्रीसीतारामजी के परतत्त्व स्वरूप में ही श्रीमद्रामायण का तात्पर्य है इस विषय का निर्णय प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा किया गया है। अतः श्री युगल चरण कमल चञ्चरीक भक्तों के कर कमलों में इस ग्रन्थ को उपायन के रूप में भेंट कर परमानन्द का अनुभव करता हूँ।

श्री सीतारामार्पणमस्तु